समर्पण

समाज में स्तुति हो या निन्दा ....
भले ही धनपतियों का श्राप मिले ... ..
सामने आकर मृत्यु ही क्यों न खड़ी हो .. . ..
न्याय पथ पर अविचल रहेंगे धीर ....

इसी आशा में देशवासियों को समर्पित—

यशपाल

विषय-सूची

गांधीवाद् की शव-परीक्षा की ज़रूरत ?

सन् १९२० से १९४० तक भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास का गांधीवाद का युग कहा जा सकता है। १९२० के राजनैतिक असंतोष की अवस्था में महात्मा गांधी ने देश के सामने जनता के असंतोष को प्रकट करने का एक क्रियात्मक उपाय सत्याग्रह और असहयोग के रूप में पेश किया। सन् १९२० का सत्याग्रह और असहयोग १९४० के सत्याग्रह की तरह आध्यात्मिक न था, वह सर्वसाधारण जनता की समझ में आ सकने योग्य था। उस समय के राजनैतिक वातावरण में सत्याग्रह और असहयोग का अर्थ जनता ने समझा अपने अधिकार की प्राप्ति के लिये संघर्ष और उसे बन्धन में रखनेवाली शक्ति की सहायता न करना। राजनैतिक दृष्टि से इन शब्दों का दूसरा अर्थ हो भी नहीं सकता। सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में उसे ख़ूब सफलता मिली। शासक शक्ति के विरोध में पराधीनों का आन्दोलन सत्याग्रह और असहयोग के सिवा और कुछ हो भी नहीं सकता। देश और समय की परिस्थितियों के अनुसार सत्याग्रह और असहयोग सशस्त्र या निशस्त्र दोनों ही प्रकार का हो सकता है। भारत के लिये सशस्त्र सत्याग्रह और असहयोग का अवसर न था, न है। सत्याग्रह और असहयोग को निशस्त्र रूप से जनता की सामूहिक शक्ति के सहारे चला सकने की सूझ भारत की राजनीति को महात्मा गांधी की बड़ी भारी देन है।

सत्याग्रह और असहयोग को निशस्त्र और अहिंसात्मक बना देने से वह आम जनता के लिये सुगम होगया। आम जनता की चीज़

बन सकने का कारण सन् १९२० के राजनैतिक आन्दोलन का जो विस्तार हुआ वह भारतवर्ष की मौजूदा पीढ़ी के जीवन में एक नयी और बहुत बड़ी बात थी। भयभीत और उत्साहहीन जनता के लिये सामूहिक रूप से आवाज़ उठा सकने का अवसर पा लेना साधारण घटना न थी। यद्यपि आन्दोलन का उद्देश्य स्वराज्य पूरा न हो सका, फिर भी आन्दोलन के प्रदर्शन ने जनता में उत्साह और साहस भर दिया। जनता की इतनी बड़ी राजनैतिक सेवा कर सकने के कारण महात्मा गांधी जनता के लिये पूज्य होगये। भारत की राजनीति गांधी-वादी आध्यात्मिकता के आधीन होगई। गांधीवाद का महत्व और शक्ति बहुत बढ़ गई। वह देश के राजनैतिक आन्दोलन को आगे लेजाने का साधन न रहा, बल्कि राजनैतिक आन्दोलन गांधीवाद के आदर्श को पूरा करने का साधन बनने लगा। गांधीवाद के आदर्श कांग्रेस के राजनैतिक कार्यक्रम का रूप लेने लगे।

गांधीवाद केवल राजनीति ही नहीं। वह जीवन का एक दृष्टिकोण है। गांधीवादी दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं। वह इतिहास और तर्क के आधार पर नहीं चलता। उसका आधार है, विश्वास और संस्कार। विश्वास को दृढ़ बनाने के लिये गांधीवाद मनुष्य की बुद्धि और विवेक का भरोसा नहीं कर सकता, वह सहारा लेता है भगवान की प्रेरणा का। मनुष्य की परिस्थितियाँ और उसके अनुभव बदलते रहते हैं। परिस्थितियों और अनुभव के आधार पर खड़ा होने वाला विश्वास, समय के अनुसार बदल जायगा। विश्वास का यह बदलना या उसकी अस्थिरता प्रवाह में बहती हुई नाव की अस्थिरता के समान है। मनुष्य के विश्वास की नाव उसकी परिस्थितियों के प्रवाह पर बहती जाती है। यह क्रम विकास का मार्ग है। यदि प्रवाह में नाव को स्वाभाविक गति से बहने न देकर डांड लगाकर खड़ा कर देने का यत्न किया जायगा, तो नाव की अवस्था विषम होजायगी, भँवर पैदा होजायँगे और वह डूब भी जा

सकती है। मनुष्य के विश्वास और धारणा भी यदि परिस्थितियों के प्रवाह के अनुकूल बदलते न रहेंगे तो परिस्थितयों के प्रवाह में अड़चन पैदा करेंगे। जब मनुष्य समाज की व्यवस्था परिस्थितियों के विरुद्ध, विश्वास के आधार पर होगी तो परिस्थितियों और विश्वास में विरोध के कारण अव्यवस्था और अशान्ति पैदा हो जायगी।

समाज को व्यवस्था-पूर्वक चलाये जाने के लिये नैतिकता की दाग़बेल लगाई जाती है। परिस्थितियों के बदलने पर व्यवस्था का बदलना ज़रूरी होता है और उसके साथ ही नैतिकता की दाग़बेल भी नये सिरे से देनी पड़ती है। यह विकास का क्रम है और मनुष्य-समाज का लाखों वर्ष पुराना इतिहास, विकास के इस क्रम का ही विस्तृत रूप है। मनुष्य-समाज के अतीत अनुभव के आधार पर ही, भविष्य के लिये विकास का क्रम निश्चित किया जा सकता है।

जीवन का एक संकुचित रूप है और दूसरा विस्तृत। संकुचित रूप से जीवन समाज और परिस्थितियों की स्थिरता चाहता है। स्थिरता के बिना जीवन के पैर नहीं जम सकते। उसमें पूर्णता तथा विकास की नयी मंज़िल की ओर बढ़ सकने की शक्ति नहीं आ सकती। जीवन का विस्तृत रूप अस्थिरता और परिवर्तन (विकास) का है। जीवन की विस्तृत अस्थिरता और परिवर्तन के क्रम में जीवन की स्थिरता सीढ़ियां या मंज़िलों के समान हैं। स्थिरता और परिवर्तन में विरोध नहीं। स्थिरता के बिना परिवर्तन और विकास के लिये परि-स्थिति और शक्ति पैदा नहीं हो सकती। इसी प्रकार परिवर्तन के बिना स्थिरता और पूर्णता के लिये अवसर और परिस्थिति नहीं आ सकती। स्थिरता और परिवर्तन एक दूसरे के लिये आवश्यक है। जीवन की रक्षा के लिये स्थिरता और जीवन के विकास के लिये परिवर्तन अवसर देता है। मनुष्य की संकुचित दृष्टि के सामने स्थिरता ही सब कुछ जान पड़ती है, परिवर्तन को वह भूल जाता है।

संकुचित दृष्टि के कारण मनुष्य को स्थिरता से इतना मोह हो जाता है कि वह परिवर्तन से डरने लगता है। परिवर्तन के लिये परिस्थितियाँ मनुष्य स्वयम ही तैयार करता है परन्तु परिवर्तन का अवसर आ जाने पर वह उससे भयभीत होने लगता है। परिवर्तन का अवसर आ गया है, इस बात की सूचना समाज के सम्बन्धों में पैदा हो जाने वाले संकट और अव्यवस्था देते हैं। मनुष्य की संकुचित बुद्धि और आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति* समाज में संकट और अव्यस्था को अनुभव करती है परन्तु परिवर्तन के लिये क़दम उठाने से उसे भय लगता है। इस भय से बचने के लिये वह परिवर्तन की आवश्यकता पैदा करनेवाले कारणों को दूर कर देना चाहती है। जो परिस्थितियाँ परिवर्तन की आवश्यकता पैदा करती हैं, उन को दूरकर वह पहले की उस अवस्था में लौट चलने की बात सोचने लगता है जहाँ परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव न हो रही थी। उस अवस्था में लौट चलने के लिये वह संतोष और त्याग की बात सोचने लगता है। मनुष्य-समाज के विकास में प्रत्येक परिवर्तन के समय ऐसा ही हुआ। समाज की आत्मरक्षा की विस्तृत और विराट प्रवृत्ति उसे विकास की ओर बढाती हैं परन्तु आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति उसे पीछे की ओर ले जाना चाहती है। इन दोनों वृत्तियों में जो संघर्ष होता है, वही क्रान्ति का रूप ले लेता है।

क्रान्ति या परिवर्तन से समाज में हलचल ज़रूर होती है परन्तु वह जीवन की शत्रु या हिंसा नहीं, वह जीवन की रक्षक और पोषक है। माता के गर्भाशय की परिस्थितियों में, शिशु के पूर्ण हो चुकने के बाद, शिशु के जीवन की रक्षा के लिये, उसका नयी परिस्थितियों में आना आवश्यक होता है। व्यवस्था के इस परिवर्तन में कुछ उथल-पुथल या

* आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति को *Animal instinct of self-preservation* कहा जा सकता है।

पीड़ा अनुभव होती ही है परन्तु उससे बचने के लिये शिशु को माता के गर्भ में ही नहीं रहने दिया जा सकता। उससे माता और शिशु दोनों ही समाप्त हो जायँगे। यही बात पुरानी व्यवस्था के गर्भ से नयी व्यवस्था के जन्म के बारे में भी है।

इस बात में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और गांधीवाद का भेद है। गांधीवाद यह स्वीकार करता है कि समाज की वर्तमान अवस्था में शोषण है और अव्यवस्था है। इन सब संकटों और अव्यवस्थाओं का उपाय भी वह करना चाहता है। परन्तु वह यह स्वीकार नहीं करता कि समाज में यह सब संकट और अव्यवस्था स्वाभाविक विकास से ही पैदा होगये हैं और इनका उपाय भी विकास के इस क्रम को जारी रखना ही है। आज दिन संकट इसलिये अनुभव होरहे हैं कि समाज की परि-स्थितियों ने विकास के जिस परिवर्तन के लिये अवसर बनाया है, उसे रोका जा रहा है। आगे बढ़ने का मार्ग बन्द है। विपरीत इसके गांधीवाद संकट और अव्यवस्था पैदा कर देनेवाली परिस्थितियों को दोष देता है। वह कहता है हमें इन परिस्थितियों से पहले की अवस्था में लौट जाना चाहिये। मनुष्य ने अपने अनवरत परिश्रम और बलिदान से मनुष्य-जाति को सबल और समर्थ बनाने के लिये जिन साधनों को पैदा किया है, उन्हें गांधीवाद संकट और अव्यवस्थाका कारण बताता है। वह कहता है मैशीन को मिटा दो क्योंकि मैशीन मनुष्य का सामर्थ्य बढाकर उसे अन्याय और अत्याचार की शक्ति देती है। वह यह नहीं सोचता कि मैशीन द्वारा मनुष्य की बढी हुई शक्ति उसे समाज की भलाई करने का भी उतना ही अवसर देती है। वह यह नहीं सोचता कि मैशीन की दानवी शक्ति उलटे मार्ग पर चलकर समाज को संकट और अव्यवस्था में डाल सकती है, तो सीधे मार्ग पर चलकर वह उसके जीवन को सुखमय तथा समर्थ भी बना सकती है। उसे शिकायत है कि मैशीन की सभ्यता मनुष्य को स्वार्थी और

निर्दय बना देती है। परन्तु निर्जीव मैशीन तो स्वयम् कुछ बना या बिगाड़ नहीं सकती। मनुष्य बनता है, अपनी व्यवस्था से ही। मैशीन की महाशक्ति को छोड़कर मनुष्य-समाज पंगु बन जाय, क्या इससे यह कहीं अधिक अच्छा नहीं कि समाज के कल्याण की दृष्टि से मैशीन की शक्ति का उपयोग करने के लिये, समाज की व्यवस्था बदल दी जाय; उसे नयी परिस्थितियाँ दी जायँ जिनके द्वार पर वह आ खड़ा हुआ है? समाज नयी व्यवस्था के प्रसव की पीडा से व्याकुल हो रहा है। गांधी-वाद पुरानी व्यवस्था के पेट पर पट्टी बाँधकर इस प्रसव पीडा या हिंसा का उपाय करना चाहता है। समाज विकास के मार्ग पर मैशीन के घोड़े पर पूँछ की ओर मुख करके बैठा हुआ है। घोड़े की चाल तेज़ है, इस-लिये समाज का सिर चकरा रहा है। गांधीवाद यह स्वीकार नहीं करता कि समाज का मुख घोड़े के सिर की ओर कर दिया जाय। वह कहता है, यह सवारी सर्वनाश कर देगी, इसे समाप्त कर दिया जाय।

गांधीवाद का मार्ग त्याग का है। वह शक्तिहीनता से शान्ति, असामर्थ्य से संतोष और अभाव से समता लाना चाहता है। संसार से विमुख हो कर वह संसार में जीवन बिताना चाहता है। गांधीवाद के इस कोकून* में बन्द होकर भारत की राजनीति विकास करना चाहती है। परिवर्तन को पंगु बना देने वाली गांधीवादी नीति, समाज को संकट और अव्यवस्था से मुक्ति नहीं दिला सकती। पीडा और भूख से तड़पते समाज के जनता रूपी शरीर का हित गांधीवादी नीति में पूरा नहीं हो सकता। यह नीति समाज के शरीर को रोगी बनाये हुये उन कीटाणुओं की ही रक्षा कर रही है जो समाज के रोग से पुष्ट हो रहे हैं। पुरानी परिस्थितियों की नैतिकता के शव को ले वह नवीन व्यवस्था के मार्ग में अर्गला मात्र बन रही है। गांधीवाद की इस विकास विरोधी नैतिकता से मुक्ति पाये बिना समाज स्वतंत्रता की ओर

---

* रेशम के कीड़े का खोल 'कोकूनी'।

नहीं जा सकता। भारतवर्ष के राजनैतिक विकास में गति रुक जाने से हम परेशान हैं परन्तु इसकी ज़िम्मेवारी हमीं पर है, क्योंकि हमने गति और विकास की विरोधी नीति के हाथ अपना नेतृत्व सौंप रखा है। यह सब बातें अस्पष्ट पहेली सी जान पड़ेंगी। इस पहेली को सुलझाने के लिये ही आगे के सब पृष्ठ लिखे गये हैं।

शव-परीक्षा शब्द से यदि किसी को विरोध या वैमनस्य की गंध आये, तो इतना ही कहूँगा कि रागद्वेष का तो कोई कारण कल्पना में भी नहीं। केवल कर्तव्य समझकर यह काम करना पड़ रहा है जो कुछ लोगों की नज़र में केवल दुस्साहस मात्र होगा। शव की परिक्षा मनुष्य समाज के प्रति विरोध और घृणा की भावना से नहीं, उसके हित के लिये ही की ती है। भारत के राजनैतिक स्वास्थ्य के लिये गांधीवाद—भारत की आधुनिक राजनीति-की शव परीक्षा जरूरी है।

इस काम को करने का निश्चय तो कई दिन से था परन्तु 'विप्लवी-ट्रैक्ट' के काम से फुर्सत न मिल रही थी। ८ जून को भारत रक्षा कानून दफा ३८ में गिरफ्तार हो जाने पर इस काम को पूरा न कर सकने का खेद मन में लेकर जेल गया। उन मित्रों को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने जमानत पर छुड़ा लिया और यह काम जेल जाने से पहले पूरा हो सका *। इस कठिन समय में पुस्तक के प्रकाशन में जिन साथियों से सहायता मिली, स्वयम जानते हैं, मैं उनका कितना आभारी हूँ।

रात के डेढ़ बजे,
१३ अगस्त १९४१ — यशपाल

---

* शायद जाना ही पड़े।

गांधीवाद

"गाधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नही कि मैंने किसी नये तत्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य हैं, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयासमात्र किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज़ नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आये हैं ... ..."† इसी सत्य और अहिंसा को चरितार्थ करना, महात्मा गांधी और उनके अनुयाइयों की संस्थाओं का आदर्श और उद्देश्य है। इस विषय में महात्मा गाधी आगे कहते हैं:—

"ऊपर जो कुछ मैंने कहा है, उसमें मेरा सारा तत्व, ज्ञान यदि मेरे विचारो को इतना बडा नाम दिया जा सकता है, तो समा जाता है। आप उसे गाधीवाद न कहिये, क्योंकि उसमें 'वाद' जैसी कोई बात नहीं है।" †

महात्मा गाधी के शब्दों में ही यदि गाधीवाद को समझना हो तो सत्य, और अहिंसा की साधना ही मनुष्य का उद्देश्य है। गाधीवाद का मत है, व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना से मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर व्यक्तिगत पूर्णता प्राप्त करता है और सामूहिक रूप से इन गुणों की साधना द्वारा मनुष्य समाज में 'राम-राज्य' स्थापित हो सकेगा। गाधीवाद का सामाजिक और राजनैतिक आदर्श

---

† अपने कार्य-क्रम के सम्बन्ध में महात्मा गाधी के विचार, 'हरिजन बंधु' २६–३–१६३६'।

राम-राज्य है। संक्षेप मे सत्य, अहिंसा, सेवा और राम-राज्य की साधना गाधीवाद का आदर्श है और यही उसका कार्य-क्रम और साधन है। जिस आदर्श, उद्देश्य और कार्यक्रम का प्रचार महात्मा गाधी करते हैं, उसका 'गाधीवाद' के नाम से पुकारा जाना उनकी इच्छा के अनुकूल नहीं। परन्तु महात्मा गाधी के अनुयायी अपने सिद्धान्तों और कार्य-क्रम को जनता के सम्मुख रखते समय महात्मा गाधी का नाम इनके साथ जोड़ देना उपयोगी समझते हैं। दूसरे सिद्धान्तों से अपने सिद्धान्तों की तुलना करते समय, अपनी पुस्तको, समाचार-पत्रों और बातचीत में वे 'गाधीवाद' शब्द का ही प्रयोग करते हैं। इसलिये यदि हम महात्मा गाधी की नीति, सिद्धान्तों और कार्य-क्रम का ज़िक्र करने के लिये गांधीवाद शब्द का उपयोग करें, तो यह अनुचित न होगा ; न उसमें ग़लतफ़हमी के लिये ही कोई गुंजाइश होनी चाहिये।

महात्मा गाधी का जीवन, विनय और त्याग का जीवन है। अपने नाम से सम्प्रदाय चलाने की महत्वाकांक्षा से इनकार करना ही उन्हें शोभा देता है परन्तु हमारे विचार में महात्मा गाधी को स्वयं भी इस नाम पर कोई एतराज़ नहीं। कराची कांग्रेस के मौके पर (२५ मार्च १९३१) अपने कार्य-क्रम का विरोध करनेवालों को उत्तर देते समय उन्होंने 'बल' पूर्वक कहा था—"गाधी मर सकता है किन्तु गाधीवाद अमर रहेगा।"* अपने सिद्धान्तों को महात्मा गाधी अमर समझते हैं और दुखी, दरिद्र, पराधीन भारतवर्ष के कल्याण का उपाय भी उनके विचारमें इन्हीं सिद्धान्तो और कार्य-क्रम से ही हो सकता है। इससे भी कहीं अधिक विश्वास महात्मा गाधी को अपने सिद्धान्तों की शक्ति में है। अपने सिद्धान्तों द्वारा वे न केवल भारत से दुख, दारिद्रय और गुलामी दूर कर देने का विश्वास दिलाते हैं, बल्कि संसार भर

* 'कांग्रेस का इतिहास', पृ० ४६०।

में सुव्यवस्था, सुख और शान्ति का उपाय भी केवल अपने ही सिद्धान्तों में उन्हे दिखाई देता है। महात्मा गाधी के विचार मे, या कहिये गाधीवाद के अनुसार संसार, ख़ास कर संसार का वह भाग जो पश्चिमी सभ्यता का उपयोग कर भौतिक समृद्धि की राह पर चल रहा है, अवनति और नाश के गढ़े मे गिर रहा है। गाधीवाद की दृष्टि मे भारतवर्ष के दुख, संकट और पराधीनता का कारण भी यही सभ्यता है। भारत को ग़ुलाम बना रखनेवाली शक्ति को तो पश्चिमी सभ्यता ने पैदा किया ही है, इसके इलावा पश्चिम की सभ्यता स्वयं भारतवर्ष मे प्रवेश कर इस देश को नष्ट कर रही है। यह सभ्यता सत्य, अहिंसा, सेवा और धर्म के विपरीत है, इसलिये सर्वनाशकारी है। गाधीवाद का उद्देश्य है, भारत को पश्चिमी सभ्यता के पंजे से छुडाकर सत्य, अहिंसा और धर्म के मार्ग पर ले जाना और इस देश मे राम-राज्य क़ायम कर सुख तथा शान्ति की व्यवस्था करना।

सत्य, अहिंसा और धर्म द्वारा मनुष्य समाज मे सुख शान्ति और न्याय की स्थापना होनी चाहिये ; इस विषय मे तो सभी वाद, सिद्धान्त और कार्य-क्रम सहमत है। सत्य अहिंसा और न्याय क्या है और किस कार्य-क्रम से उसे प्राप्त किया जा सकता है, इसी विषय मे मतभेद हो जाता है। पश्चिमी सभ्यता या भौतिकवाद (Materialism) को गाधीवाद मनुष्य समाज के लिये हानिकारक समझता है। अपने विश्वास के अनुसार वह भी सत्य, अहिंसा और न्याय की स्थापना करने का यत्न करता है। भेद दोनो की विचारधारा मे है। भौतिकवाद सासारिक परिस्थितियों के विचार से मनुष्य समाज के सासारिक कल्याण को उद्देश्य समझता है। गाधीवाद मनुष्य के कल्याण के लिये सासारिक उन्नति को गौण और आध्यात्मिक उन्नति को मुख्य समझता है। गाधी-वाद की दृष्टि मे सत्य, अहिंसा और न्याय का आधार आध्यात्मिक-ज्ञान और प्रेरणा है और मनुष्य जीवन का उद्देश्य सासारिकता से मुक्ति

पा कर आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करना है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य समझ कर ही गाधीवाद समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का ढाचा तैयार करना चाहता है।

सत्य और अहिंसा का उद्देश्य

मनुष्य अकेला नहीं रहता, न वह रह ही सकता है। समाज का अंग बनकर सामूहिक रूप से उसे रहना पड़ता है। किसी मनुष्य के व्यवहार का असर उसके साथ रहनेवालों के जीवन पर और उसके साथ रहनेवालों के व्यवहार का प्रभाव उसके अपने जीवन पर पड़े बिना नही रह सकता। यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य इस प्रकार व्यवहार करे कि वह दूसरों के लिये कष्ट और विरोध का कारण न बनकर उनका सहायक बन सके। जिस प्रकार के आचरण द्वारा मनुष्य व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से एक दूसरे का सहायक बनकर सुख-शान्ति और व्यवस्था मे रहता हुआ उन्नति कर सके, जिस प्रकार वह व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अधिक शक्तिशाली बनकर विकास की ओर जा सके, उन तरीकों को निश्चित करने के लिये ही सिद्धान्त बनाये जाते हैं। इन सिद्धान्तो को ही धर्म का नाम दिया जाता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य और कर्तव्य क्या है? इस विश्वास मे अनेक मतभेद हैं। इन मतभेदों के आधार पर ही मनुष्य की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं और धर्मों में भेद हो जाता है। अनेक मतभेद होने पर भी यह बात सभी मत के लोगों को स्वीकार होगी कि मनुष्य के जीवन की रक्षा करना आवश्यक है और उसके लिये उन्नति का मार्ग खुला रहना चाहिये। मनुष्य जीवित ही न रह सके तो यह सोचने का मौक़ा नहीं रह जाता कि उस के जीवन का आदर्श, उद्देश्य और धर्म क्या है? जीवित रह कर ही मनुष्य अपने आदर्श, उद्देश्य और धर्म के विषय में चिन्ता कर सकता है और उसे सुधारने या उन्नत बनाने की बात सोच

सकता है। यदि मनुष्य अपने जीवन के लिये आदर्श, उद्देश्य और कर्तव्य की बात सोचना चाहता है तो उसका सबसे पहला कर्तव्य जीवित रहने के लिये प्रयत्न करना है। मनुष्य ने किया भी यही है। उसके व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों का इतिहास इस बात का गवाह है कि मनुष्य जीवित रहने, भली प्रकार जीवित रहने और उत्तरोत्तर शक्ति और सामर्थ्य प्राप्तकर आराम और समृद्धि में जीवित रहने का यत्न करता आया है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये ही मनुष्य ने आदर्श, उद्देश्य, कर्तव्य और धर्म के साधनों का व्यवहार किया है। इस उद्देश्य के पूरा करने के लिये मनुष्य ने जो विचार और निश्चय किये, जिन व्यवहारो का उपयोग किया, उन सब की शृंखला ही मनुष्य के धर्म और सभ्यता का इतिहास है। मनुष्य जीवन को उद्देश्य और धर्म या कर्तव्य को साधन मानकर भी कभी-कभी धर्म और कर्तव्य के लिये मनुष्य का जीवन बलिदान कर देना मुनासिब होता है।

बलिदान और क़ुर्बानी की उपयोगिता तथा बुद्धिमत्ता को समझने के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि मनुष्य एक व्यक्ति के रूप में अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। मनुष्य एक दूसरे के आसरे जीते हैं। जिस प्रकार एक मनुष्य शरीर मे करोड़ो कोष्ठ (Cells) या जीवाणु होते हैं, प्रत्येक अणु एक पृथक जीव होता है परन्तु मनुष्य शरीर से पृथक होकर उन कोष्ठों और अणुओं का जीवन नहीं रह सकता। उसी प्रकार मनुष्य व्यक्ति भी मनुष्य समाज से पृथक होकर अकेला जीवित नहीं रह सकता।

व्यक्ति का जीवन समाज के जीवन से ही चल सकता है। व्यक्ति का हित-अहित, भलाई-बुराई समाज के हित-अहित और भलाई-बुराई पर निर्भर है। लाखो बरसों और पीढ़ियो के अनुभव से मनुष्य इस बात को समझ गया है कि वह समाज से पृथक जीवित नहीं रह सकता। मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति और शक्ति समाज की उन्नति पर ही निर्भर

है । मनुष्य का अपने हित, भलाई और उन्नति के इस राज़ को समझना ही उसकी बुद्धिमानी है और इसे भूल जाना या उसकी परवाह न करना ही मूर्खता है । धर्म और कर्तव्य के नाम पर व्यक्ति को वलिदान कर देने की आवश्यकता उसी समय अनुभव होती है ; जव मनुष्य के व्यक्तिगत हित और समाज के हित में विरोध दिखाई देने लगता है ।

यदि गहरी नजर से देखे तो जान पड़ेगा कि मनुष्य को उसके अपने व्यक्तिगत हित और कल्याण के विचार और इच्छा ने ही सामूहिक और सामाजिक रूप से रहने का तरीक़ा सिखाया है । मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत जीवन की रक्षा और विकास के लिये साधन के रूप में समाज का व्यवहार किया परन्तु यह विकास ऐसा हुआ कि व्यक्ति समाज का अंगमात्र वन गया । हमें यह वात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि व्यक्ति की रक्षा और उन्नति ही वास्तविक उद्देश्य है और समाज उसका साधन है । यदि मनुष्य के जीवन का तरीक़ा किसी और प्रकार का होता, यदि वह वन्य पशुओं की भाँति अपने जीवन की आवश्यकताये अकेला घूम-फिरकर पूरी किया करता, जैसे कि वह लाखों वर्ष पूर्व जंगली होने की अवस्था में करता था, तो समाज के साधन की आवश्यकता उसे न होती । मनुष्य ने अपना जीवन इस प्रकार का वनाया है कि वह समाज का अंग वने विना नही रह सकता । ऐसी अवस्था में जव व्यक्ति और समाज के हितों में विरोध दिखाई दे, तो उसमें व्यक्ति को वलिदान हो जाना पड़ता है । इस प्रकार समाज में प्रकट होनेवाले अन्तर विरोध (अड़चन) सूचना देते हैं कि साधारण नियम के अनुसार यदि व्यक्ति अपना स्वार्थ पूरा करने का प्रयत्न करता है, तो उससे उसके समाज के दूसरे मेम्वरों की भलाई में रुकावट पड़ती है या उससे समाज की हानि होती है । यदि व्यक्ति के स्वार्थ को पूरा करने के लिये समाज को हानि होने दी जायगी, समाज को नष्ट होने दिया जायगा, तो समाज के नष्ट होने पर व्यक्ति भी वच न सकेगा ।

समाज में अन्तर विरोध की एक दूसरी अवस्था भी है। समाज मे ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब समाज की व्यवस्था के कारण व्यक्ति का निर्वाह कठिन हो जाता है। जैसे हम आजकल देखते हैं कि बेकारी के कारण योग्यता और इच्छा होते हुए भी मनुष्य कुछ नहीं कर पाता और मोहताजी की अवस्था मे रहने पर वह दिन-प्रतिदिन अयोग्य और सामर्थ्यहीन होता जाता है। समाज की व्यवस्था-के कारण यह संकट केवल एक व्यक्ति पर नही वल्कि समाज के अधिकाश लोगो पर, स्वयम् समाज पर आता है। उसका उपाय हो सकता है, समाज की व्यवस्था मे परिवर्तन। परिवर्तन का अर्थ है, विरोध की अवस्था को दूर कर सुव्यवस्था क़ायम करना। अन्तर विरोध से समाज के व्यक्तियों और श्रेणियों में परस्पर संघर्ष और हिंसा होने लगती है। परिवर्तन इसलिये ज़रूरी होता है कि हिंसा के कारणों को दूर कर ऐसी व्यवस्था क़ायम की जाय जिसमे समाज के सभी लोगों के लिये जीवित रहने का स्थान हो और हिंसा के कारण न रहे।

सत्य, अहिंसा और धर्म व्यक्ति और समाज की उन्नति और रक्षा के नियम हैं। जब कोई नियम या सिद्धान्त अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहे, तो उन नियमों और सिद्धान्तो की यथार्थता पर गौर करना ज़रूरी हो जाता है। जिस नियम और व्यवस्था को सत्य, अहिंसा और धर्म कहकर पुकारा जा रहा है, यदि वह समाज से हिंसा और विरोध को दूर करने मे समर्थ नही, तो वह न सत्य है, न अहिंसा और न धर्म! सत्य, अहिसा और धर्म की कसौटी यह होनी चाहिये कि वह समाज से हिंसा दूर कर शान्ति और व्यवस्था क़ायम कर सकें। यह शान्ति और व्यवस्था मनुष्य समाज को संतुष्ट बना सके और सब व्यक्तियों को समान रूप से विकास का अवसर दे सकें।

सत्य और अहिंसा क्या है ?

सत्य और अहिंसा क्या है ? साधारणतः सत्य और अहिंसा के लिये

धर्म शब्द का व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु फिर प्रश्न उठता है, धर्म क्या है ? हमने यह देख पाया है कि धर्म (सत्य, और अहिंसा) का उद्देश्य व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की रक्षा और विकास है। जो तरीक़े और काम इस उद्देश्य को पूरा कर सकें वे ही सत्य, अहिंसा और धर्म हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की रक्षा और उसका विकास सदा एक ही तरीक़े से नहीं हुआ। कारण यह है कि मनुष्य व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से सदा एक ही प्रकार की परिस्थितियों मे नहीं रहा। इस बात के लिये स्वयं मनुष्य समाज का इतिहास गवाह है। मनुष्य की बदलती हुई परिस्थितियों को समझ पाने के लिये हमे बहुत दूर अतीत के इतिहास मे जाने की ज़रूरत नहीं। पिछले कुछ वर्षों के अपने इतिहास में ही हम इस सत्य को देख सकते हैं। आज से पचीस वर्ष पूर्व हमारा जीवन जिस प्रकार का था, अपनी आवश्यकताओं को हम जिस प्रकार पूरा करते थे, बिलकुल ठीक उसी प्रकार आज हमारा जीवन नही है। आज से सैकड़ों और हज़ारों वर्ष पूर्व के मनुष्य जीवन और हमारे आज के जीवन में और भी अधिक भेद है। परिस्थितियो के अनुसार आवश्यकता को अनुभव कर व्यक्ति और समाज की रक्षा और विकास के लिये समाज में नियम बनाये जाते रहे हैं और यह नियम आवश्यक रूप से बदलते भी रहे हैं।

सत्य, अहिंसा, सेवा और धम इन शब्दो का या इस भाव को प्रकट करनेवाले दूसरे शब्दों का प्रयोग मनुष्य समाज सदा ही करता रहा है परन्तु परिस्थितियों के अनुसार इन शब्दों से प्रकट होनेवाले कार्य और तरीक़े भिन्न-भिन्न रहे हैं। जिस समय और जिन परिस्थितियों में जो तरीक़ा या कार्य व्यक्ति और समाज के जीवन रक्षा और विकास के लिये उपयोगी और आवश्यक हुआ, वही सत्य, अहिंसा, सेवा या धर्म समझा गया। इतिहास की परीक्षा से हम देख पाते हैं कि सत्य, अहिंसा,

सेवा और धर्म का क्रियात्मक रूप परिवर्तनशील है। दूसरी ओर गाधीवाद की दृष्टि मे सत्य और धर्म शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील हैं। वे मनुष्य के अपने निश्चय से बाहर एक अन्य शक्ति, ईश्वर की आज्ञा और विधान हैं।

गाधीवादियो की दृष्टि मे जीवन का ध्येय और उद्देश्य जीवन की रक्षा और विकास नहीं। गाधीवादियों की दृष्टि मे—"जीवन का उद्देश्य परमेश्वर का साक्षात्कार करना है—जीवन के दूसरे सभी कार्य इस ध्येय को सिद्ध करने के लिये हैं।" १ गाधीवाद कहता है "सत्य का अर्थ है परमेश्वर—यह सत्य का पर (आध्यात्मिक) अथवा ऊँचा अर्थ हुआ। अपर (सासारिक) अथवा साधारण अर्थ मे सत्य के मानी हैं सत्य विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म।" २ गाधीवाद सत्य और परमेश्वर को एक ही वस्तु समझता है परन्तु परमेश्वर और सत्य की परिभाषा करते समय उन दोनो मे भेद प्रकट हो जाता है। परमेश्वर की परिभाषा करते समय गाधीवाद कहता है—"इस परमेश्वर का स्वरूप मन और वाणी से परे है,—उसके सम्बन्ध मे हम इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहनेवाला, विश्व का आत्मा रूप अथवा आधार रूप और उसका कारण है। वह चेतन अथवा ज्ञान-स्वरूप है। उसीका एक सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान् हैं। यदि एक छोटे शब्द का प्रयोग उसके लिये करना चाहे तो उसे हम सत्य कह सकते हैं।" ३ तर्क और बुद्धि के आसरे चलनेवाले व्यक्ति को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता कि जिस वस्तु को गाधीवादी मन और वाणी से परे मानते हैं, उसके विषय मे इतनी जानकारी उन्हे किस साधन से प्राप्त हुई ? जानकारी का साधन, मन और बुद्धि के सिवा

---

(१) 'गाधी विचार दोहन' पृष्ठ स० ४। (२) पृष्ठ सं० ५।
(३) पृष्ठ स० ४।

और क्या हो सकता है ? यदि हम कुछ देर के लिये यह मान भी ले कि परमेश्वर के विषय में गाधीवादियों की यह इत्तला सही है, तो इतना स्वीकार किये विना चारा नही कि मनुष्य के अनुभव, ज्ञान और जीवन में इस परमेश्वर का कोई भी गुण कहीं दिखाई नहीं पडता। ऐसी अवस्था में इस परमेश्वर का साक्षात्कार किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

गाधीवाद की दृष्टि में परमेश्वर और सत्य एक है। परमेश्वर की परिभाषा गाधीवाद की दृष्टि से हम देख चुके। सत्य की परिभाषा को भी समझना उपयोगी होगा। "जो विचार हमारी राग-द्वेषहीन, श्रद्धा भक्तियुक्त तथा निष्पक्ष बुद्धि को सदैव के लिये, अथवा जिन परिस्थितियों तक हमारी दृष्टि पहुँच सकती है उनमें अधिक-से-अधिक समय तक के लिये उचित और न्याय प्रतीत होते हैं, वही हमारे लिये सद्विचार हैं।"[1] इस परिभाषा के दो भाग हैं। अन्तिम भाग परिस्थितियों के अनुसार अनुभव से सत्य की जाँच के सिद्धान्त को स्वीकार करता है परन्तु पहला भाग परिस्थितियों की जाँच करने के साधन, तर्क और बुद्धि पर भक्तियुक्त होने की पाबन्दी लगा देता है। भक्ति का अर्थ है, ईश्वर मे विश्वास! उस ईश्वर में, जो मन और वाणी से परे है। जो वस्तु मन और वाणी से परे है, उसका हमारी दृष्टि और अनुभव मे आ सकनेवाली परिस्थितियों से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? बुद्धि के भक्तियुक्त होने के साथ ही उसके निष्पक्ष होने की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया है। जो बुद्धि भक्तियुक्त है, अर्थात् पहले ही भगवान् हैं, इस बात को स्वीकार कर चुकी है और यह भी मान चुकी है कि समाज और ससार का विधान उस शक्ति के आसरे है, वह भगवान् की इच्छा द्वारा क़ायम व्यवस्था मे अन्याय और अत्याचार का मौजूद होना कैसे स्वीकार कर सकती है ? ऐसी बुद्धि

(१) 'गाधी विचार दोहन' पृष्ठ सं० ५।

यदि वह समाज मे अन्याय और अत्याचार का मौजद होना स्वीकार करेगी भी तो उसका दोष समाज की व्यवस्था मे स्वीकार न कर, मनुष्य के दुर्गुणो के ही माथे जड़ेगी। इस प्रकार गाधीवाद जब मनुष्य व्यक्ति और समाज के लिये जीवन की रक्षा और विकास के नियमों सत्य और धर्म को निश्चित् करने की बात सोचता है, तो उससे पहले ईश्वर का खूँटा गाड़कर ईश्वर विश्वास और भक्तियुक्त बुद्धि की रस्सी व्यक्ति और समाज के गले मे बाँध देता है। परिणाम यह होता है कि समाज उस दायरे से बाहर नही निकल सकता जहाँ उसके विकास के लिये पर्याप्त स्थान न होने के कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कुचलकर हिंसा कर रहा है।

गाधीवाद की दृष्टि मे सत्य-धर्म का उद्देश्य जीवन की रक्षा और विकास नही, बल्कि ईश्वर से साक्षात्कार है। यह ईश्वर विश्व का आत्मारूप और आधाररूप है। ईश्वर को विश्व का आत्मारूप और आधाररूप मानने का अर्थ हुआ कि विश्व और समाज की व्यवस्था ईश्वर के विधान के अनुसार है। ईश्वर चेतन और ज्ञान स्वरूप है इसलिये उसके इस विधान मे कोई भूल-चूक नहीं हो सकती। समाज मे यदि मनुष्य को अत्याचार और सकट अनुभव होता है, तो वह मनुष्य के अपने दुर्गुणो के कारण! इस अत्याचार और संकट का उपाय यह है कि मनुष्य इसे अत्याचार और सकट न समझ, त्याग और संतोष द्वारा सत्य और अहिंसा की साधना से भगवान् से साक्षात्कार करने का यत्न करता रहे। ईश्वर की आज्ञा और प्रेरणा से तैयार किये गये विधान में परिवर्तन द्वारा सुधार करने की चेष्टा करना भगवान् के ज्ञानस्वरूप, चेतन और पूर्ण होने मे सन्देह करना है। भगवान् की प्रेरणा क्या है? इस विषय मे शंका की गुंजाइश नहीं, क्योंकि भगवान् मन और वाणी से परे हैं। भगवान् की प्रेरणा क्या है? यह जानने और दूसरो को समझा देने का लाइसेंस केवल महात्मा लोगों को है।

हम भगवान् से प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते परन्तु यह तो सोच सकते हैं कि भगवान् नाम की वस्तु या शक्ति कहीं है भी या नहीं ; जहाँ से प्रेरणा आती है। हमें समझाया जायगा, भगवान के देश तक तुम्हारी पहुँच ही नही, तब तुम भगवान् के बारे में खोज या छान-बीन करोगे कैसे ? भगवान् के देश तक हमारी पहुँच न सही, परन्तु स्वयम् अपनी अवस्था और परिस्थिति की खोज और छान-बीन तो हम कर सकते हैं ! भगवान् जिस 'विश्व के आत्मारूप और आधाररूप हैं,' उस विश्व को तो हम देख और समझ सकते हैं। हम यह देखना और जाँचना आवश्यक समझेंगे कि परमेश्वर के अनन्त और अनादि होने के गुण इस विश्व मे क्या प्रभाव दिखाते हैं। हमें उनसे क्या सहायता मिल सकती है ? हमारे लिये उन्होंने कौन मार्ग निश्चित् किया है ?

सृष्टि की उत्पत्ति और विकास के इतिहास को खूब छान लेने के बाद भी इस सृष्टि मे किसी अनादि, अनन्त और एक रस रहनेवाली शक्ति के सचालन का सुबूत हमे दिखाई नहीं देता। इस सृष्टि के अनादि, अनन्त, ज्ञान स्वरूप और चेतन शक्ति द्वारा संचालित होने का तरीक़ा होना चाहिये था कि सृष्टि का एक उद्देश्य निश्चित् कर इसे एक निश्चित् मार्ग पर चलाया जाता। मनुष्य भी उस चेतन और ज्ञान स्वरूप शक्ति का अंग है, उसी शक्ति को मनुष्य में व्यापक होकर उसके कार्य-क्रम को निश्चित् करना चाहिये था। इस नाते मनुष्य के काम भी आरम्भ से ही पूर्ण और भूल-चूक रहित होने चाहिये थे परंन्तु मनुष्य को हम शनै-शनैः बनता हुआ देखते हैं। मनुष्य के विकास के इतिहास को देखकर हमे स्वीकार करना पडता है कि वह जैसा चेतन और ज्ञानवान आज है, सदा से वैसा नहीं रहा। मनुष्य अपनी चेतना और ज्ञान से जो कुछ आज कर सकता है, पचास वर्ष पहिले उतना नहीं कर सकता था ; सौ वर्ष पूर्व उससे कम और एक हजार वर्ष पूर्व और भी कम। मनुष्य की चेतना के शनैः-शनैः उन्नति करने की बात से जब इनकार

नहीं किया जा सकता तो यह भी मानना पड़ेगा कि किसी समय वह बहुत ही सूक्ष्म रही होगी। मनुष्य की यह चेतना मनुष्य के विकास के साथ-साथ उन्नति करती आई है। जब मनुष्य अपनी उन्नति की आरम्भिक अवस्था में रहा होगा, उसकी चेतना भी वैसी ही रही होगी; जैसी पशुओं की होती है। आज भी हम देखते हैं कि चेतना कम या अधिक सभी जीवों मे होती है। सभी जीव उसी अनादि, अनन्त, चेतन, ज्ञान स्वरूप, सम्पूर्ण विश्व मे समाये रहनेवाले भगवान् के अंश हैं फिर उनमे चेतना समान रूप से क्यों नहीं ? मनुष्य मे ही यह चेतना सबसे अधिक बढ़ गई, तो इसमें मनुष्य की अपनी भी कुछ करनी होगी ही।

मनुष्य को जब अपनी चेतना के बढ़ाने की स्वतन्त्रता है, तो उसे अपने जीवन क्रम को, अपने सत्य को बदलने की भी न केवल स्वतंत्रता ही है बल्कि ज़रूरत भी है। ऐसी अवस्था मे मनुष्य का सत्य परमेश्वर के कभी न बदलने वाले—गांधीवादी—सत्य से भिन्न है। मनुष्य के जीवन का सत्य उसके जीवन के विकास के साथ-साथ, मनुष्य जिन परिस्थितियों में पहुँचता है, अपने कार्यों से वह जिन परिस्थितियो की रचना करता है, उनके अनुसार बदलता रहता है। परन्तु गांधी-वादी सत्य अचल और अपरिवर्तन-शील है, वह मनुष्य की परिस्थितियों के अनुसार नयी व्यवस्था तैयार करना नही चाहता। जब परिवर्तन की आवश्यकता उसके सामने आकर खडी हो जाती है, वह समाज को पीछे की ओर ले जाने का ही यत्न करने लगता है।

गांधीवादियों का कहना है, गांधीवाद कोई नई वस्तु नहीं, वह केवल शाश्वत सत्य है। शाश्वत का अर्थ है, सदा एक अवस्था मे रहने-वाला। मनुष्य के जीवन में कोई परिस्थिति, कोई कार्य शाश्वत नहीं। इसलिये काल्पनिक शाश्वत सत्य मनुष्य की आवश्यकता पूरी नहीं कर सकता। अतीत की कल्पना के आधार पर खड़ा हुआ यह

सत्य केवल मनुष्य को विकास के मार्ग पर रोकने का काम कर सकता है। इस प्रकार के शाश्वत सत्य को गढ़ने का किसी समय चाहे जो प्रयोजन रहा हो, आज उसका केवल एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है, सत्य को ईश्वर का अंग बताकर मनुष्य के वश और शक्ति से परे की वस्तु ठहरा देना। मनुष्य से समाज की व्यवस्था बदलने का अधिकार छीन कर, ईश्वर प्रेरणा के फन्दे में उलझा देना।

मनुष्य को अनन्त, अनादि और शाश्वत सत्य, भगवान् का अंश स्वीकार कर लेने पर हम इस बात के लिये बाध्य हो जाते हैं कि समाज की व्यवस्था को भी शाश्वत सत्य समझ लें! समाज में यदि कहीं हमें अन्तर विरोध दिखाई दें, तो समाज की व्यवस्था को बदलने का हमें अधिकार नहीं रह जाता बल्कि हम अन्तर विरोध को कुचल देने और उनके कारणों को दूरकर देने का स्वप्न देखने लगते हैं। हम ऊपर कह आये हैं, समाज में अन्तर विरोध उस समय प्रकट होते हैं जब समाज एक मंज़िल को पार कर विकास की दूसरी मंज़िल में पहुँचने का यत्न करता है। शाश्वत सत्य की रस्सी से समाज को अतीत से बाँध गांधीवाद नई व्यवस्था के लिये प्रयत्न के अधिकार से रोक देना चाहता है। गांधीवाद स्वयम् प्रगति के मार्ग पर न चल, आँखें मूँदकर भगवान् को गुहरा केवल प्रार्थना करना चाहता है। गांधीवाद परिवर्तन और क्रान्ति से डरकर उन कारणों को ही दूर कर देना चाहता है जो क्रान्ति के लिये अवस्था तैयार करते हैं। इसी उद्देश्य से गांधीवाद कहता है, मैशीनों को दूर करो! क्योंकि मैशीन ने समाज में पैदावार का तरीक़ा बदल दिया है, समाज की व्यवस्था और परस्पर सम्बन्ध बदल जाना भी ज़रूरी हो गया है। समाज में श्रेणियों के हितों का संघर्ष दूर करने के लिये व्यवस्था में परिवर्तन करने की सलाह न दे वह दलितों को देता है त्याग का उपदेश! अर्थात् अपने हितों की चिन्ता न करो! परन्तु पीछे लौटने का यह ढंग प्रकृति-विरुद्ध है। मनुष्य ने मैशीन का विकास गांधीवाद

के भगवान की तरह लीला करने के लिये नही किया। वह उसके हज़ारो पीढ़ियों के परिश्रम का फल है और उसके भविष्य समाज की नींव है। गाधीवाद के कहने से वह मैशीन को छोड़ नहीं सकता। जिन श्रेणियों के हितों में परस्पर विरोध है, उनके एक दूसरे को पिता और पुत्र समझ लेने से ही उनके विरोध दूर होकर शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

विकास जीवन का प्राकृतिक गुण है। विकास के मार्ग मे अन्तर विरोध भी प्राकृतिक रूप से ही आता है। विकास होता है सीढ़ी-दर-सीढ़ी। प्राणियों या समाज की प्रत्येक अवस्था एक सीढ़ी होती है। एक अवस्था या व्यवस्था मे समाज के लिये जितना विकास सम्भव होता है, उसे प्राप्त कर लेने पर विकास का मार्ग आगे बन्द हो जाने से, समाज मे अन्तर विरोध के रूप में सघर्ष और हिंसा प्रकट होने लगती है। ऐसी अवस्था में परिवर्तन की ज़रूरत होती है। समाज में मौजूद व्यवस्था की स्थिति मे विरोध फूट पड़ते हैं। मौजूद व्यवस्था की स्थिति (Thesis) और विरोध की प्रतिस्थिति (Anti-thesis) मे सघर्ष के परिणाम मे एक नई स्थिति (Snythsis) पैदा होती है, जो पहले मौजूद स्थिति और उसमे प्रकट हो जानेवाले विरोधों के समन्वय से आती है। सघर्ष के बाद समन्वय के परिणाम में पैदा होनेवाली व्यवस्था नये विकास के लिये स्थिति पैदा करती है। स्थिति में विरोध पैदा होना, और सघर्ष के परिणाम स्वरूप विकास के लिये नई स्थिति का पैदा होना। यह समाजवादी विचारधारा का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialetical Materialism) कहलाता है।

समाज के जीवन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का भेद हम इस प्रकार समझ सकते हैं। हम एक समाज की कल्पना करते हैं जिसमे लोगों का निर्वाह मुख्यतः खेती पर होता है। बड़े-बड़े ठाकुर लोग भूमि के मालिक हैं। उनकी रियाया खेती करती

है। मालिक की आज्ञा बिना यह लोग अपना घर-भूमि छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। प्रजा ठाकुर की भूमि जोतती है इसलिये लगान देती है। अपनी ज़रूरत की वस्तुये लोग स्वयं तैयार कर लेते हैं। उनकी आवश्यकताये भी बहुत थोड़ी हैं। थोड़ा-बहुत व्यापार है। इस समाज में सुख शान्ति बसती है। ठाकुर पिता और प्रजा पुत्र समान है। इसे समाज की एक 'स्थिति' समझ लीजिये।

इस समाज मे मनुष्यो की संख्या बढ़ने लगती है परन्तु भूमि नहीं बढती। भूमि के जिस टुकड़े से पहले चार प्राणियों को निरवाह होता था उससे अब छः को करना पड़ता है। ठाकुर अपना लगान लिये जाता है। नई चीज़े बाज़ारों मे आने लगती हैं। छोटी मोटी मैशीन बनाकर लोग पहले से अधिक सामान तैयार करने लगते हैं। व्यापारी धन जमा करने लगते हैं। मैशीन द्वारा हाथ की अपेक्षा सस्ता और अधिक सामान तैयार होता है। व्यापार बढता है, इसलिये कारीगर मैशीन का उपयोग करते हैं। सब कारीगर मैशीन का उपयोग नही कर सकते, इसलिये व्यापारी कारखाने खोलकर सामान तैयार करते हैं। व्यापार बढने से अधिक माल की ज़रूरत होती है। व्यापारियों को काम पर लगाने के लिये मज़दूर काफी नही मिलते। मालिकों और मज़दूरो मे झगडा होता है। मालिक देना तो कम चाहता है परन्तु मजबूर है। गाँवो मे ठाकुरों की भूमि में प्रजा अधिक बढ गई है। सभी लोग भूमि का एक टुकडा चाहते हैं इसलिये ठाकुर को पहले की अपेक्षा अधिक लगान लेने का मौक़ा है। एक तो प्रजा की संख्या बढने और भूमि कम होने से कष्ट था, दूसरे लगान बढ़ने से कष्ट वढा। ठाकुर के सन्तान बढ रही है, दूसरे उसे रुपये की अधिक ज़रूरत है क्योंकि पहले से अधिक ऐश के सामान बाज़ार में मिलते हैं। ठाकुर के सभी बेटे ठाकुर बनना चाहते हैं, पर वे ठकुराई कहाँ करे? ठाकुर की प्रजा चाहती है कि वह व्यापारियों के कारखानों

में मज़दूरी कर निर्वाह करें, पर इस बात की आज्ञा नहीं। सभी ओर कष्ट और परस्पर विरोध पैदा हो जाते हैं। यह सब विरोध स्वयं समाज के भीतर से पैदा हो गये हैं। इन अन्तर विरोधो में समाज का निर्वाह नही हो सकता। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहता है, 'स्थिति' में 'प्रतिस्थिति' पैदा हो गई है इसलिये संघर्ष हो रहा है। आध्यात्मवाद कहता है, समाज मे लोभ और हिंसा बढ़ गई है, इसलिये पाप हो रहा है। द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद बताता है, क्रान्ति द्वारा व्यवस्था बदल कर नई स्थिति या समन्वय लाना चाहिए। आध्यात्मवाद कहता है, त्याग और सतोष करो, फिर पुरानी शान्ति आ जायगी।

समाज में क्रान्ति हो जाती है। नई व्यवस्था मे निश्चय होता है, सब मनुष्य स्वतंत्र और समान हैं। किसी को किसी पर हुकूमत करने का अधिकार नही, सबको स्वतन्त्रता है, जहाँ चाहें परिश्रम करे, कमायें, धन इकट्ठा करें। किसी को किसी की सम्पत्ति छीनने का अधिकार नही। ठाकुर की प्रजा के जो लोग चाहते हैं, व्यापारियो के कारखानों में मज़दूरी करने लगते हैं। वे स्वतंत्र हो गये, जहाँ काम मिला, किया। मज़दूर काफी मिलने लगी। निर्वाह के दूसरे साधन निकल आये। भूमि की तंगी महसूस नही होती। व्यापार और पैदावार बढ़ने लगे। नये आविष्कार होने लगे, सब ओर स्वतंत्रता, अधिकारों की समानता, और प्रजातंत्र क़ायम हो जाता है। समाज मे व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति और विकास का मार्ग खुल जाता है।

समाज मे क्रान्ति के बाद समन्वय से पैदा हुई स्थिति मे जितना विकास हो सकता था हो गया। एक युग बाद उसकी भी सीमा आ जाती है। स्वतंत्रता से धन कमाकर इकट्ठा करने से परस्पर मुकाबिला होने लगता है। व्यापार में मुकाबिले से कम धनवान लोग निर्धन और धनी लोग बहुत अधिक धनवान हो जाते हैं। मज़दूरो की संख्या बहुत बढ़ जाती है परन्तु मैशीनों के विकास से थोड़े से ही

आदमी बहुत-सी पैदावार कर लेते हैं। बेकारी फैल जाती है। पैदावार के साधनों के मालिकों को अवसर रहता है कि पैदावार की मेहनत करनेवालों से चाहे जितना अधिक परिश्रम करायें और चाहे जितनी कम मज़दूरी दे। ऐसी अवस्था में आध्यात्मवाद कहता है, समाज में पाप और हिंसा फैल रही है, त्याग और संतोष से काम लो ; पुरानी अवस्था में लौट चलो! द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहता है, समाज में अन्तर विरोध फिर पैदा हो गये हैं। पैदावार के नये साधनों के अनुसार नये सिरे से संगठन करने की अवश्यकता है। यदि हम लौट चलने की बात सोचे तो कितनी सीढ़ियाँ उतरना पड़ेगा? हम बनमानुस की स्थिति में पहुँचकर भी न रुक सकेंगे, क्योंकि इससे भी नीचे से विकास की सीढ़ी पर चढ़ना हमने शुरू किया था। मनुष्य स्वभाव की प्रकृति आगे बढ़ना ही है।

हमारे समाज में क़दम-क़दम पर अव्यवस्था विरोध और हिंसा दिखाई दे रही है। इन विरोधों और हिंसा के कारणों की खोजकर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं, कि समाज की मौजूदा व्यवस्था में अन्तर विरोध पैदा हो गये हैं। इस समय नई व्यवस्था या समन्वय की आवश्यकता है। नई व्यवस्था के लिये नई विचारधारा की ज़रूरत है ; जिसका अर्थ होता है कि सत्य, अहिंसा और धर्म की भावना का संस्कार नये सिरे से होना चाहिए। परन्तु गाधीवाद समाज से विरोध और हिंसा दूर करने का दम भरते समय कहता है, कि वह किसी नये तत्व का आविष्कार नहीं कर रहा। गाधीवाद पुरानी जीर्ण परिस्थितियों में बने सत्य के शिकंजे को नई और बदली हुई परिस्थितियो पर जकड़ देना चाहता है। ऐसा करने का परिणाम होगा कि उस सत्य, अहिंसा और न्याय की पुरानी धारणा में तथा समाज की नई परिस्थितियों में लगातार संघर्ष होता रहेगा। यह संघर्ष उस समय तक होता रहेगा, जब तक कि समाज की जीवन

रक्षा और विकास की प्रवृत्ति सत्य, अहिंसा और न्याय की धारणा के पुराने समय के शिकंजे को नई परिस्थितियो के अनुसार वदल नहीं देगी। यदि हम कल्पना करें कि पुराने समय की सत्य, अहिंसा और न्याय की धारणा के शिकंजे को गाधीवाद त्याग, सहनशीलता और अहिंसा की नई पुस्तियाँ और कील-काँटे लगा समाज को जकडकर उसकी प्रवृत्तियों को घोंट देने और दवा देने लायक वना देगा, तो इसका अर्थ है कि समाज अधमरी अवस्था में सिसकता रहे। परन्तु ऐसा हो नही सकेगा, क्योंकि यह वात समाज की जीवन शक्ति और विकास की प्रवृति के विरुद्ध है।

इस देश को पुरानी परिस्थितियो की जीर्ण और वेकाम केंचुली उतार कर फेंकनी ही पड़ेगी। वह उसकी गति मे रुकावट पैदा कर रही है। शाश्वत, अनादि, अनन्त सत्य की इस पुरानी केंचुली को, जो अपने समय में अपना काम पूरा कर चुकी है, गाधीवाद का नया नाम दे देने से, उसे एक करोड वेर सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सेवा और धर्म का नाम दे देने से भी वह उपयोगी नही वन सकेगी। उसे भगवान् की प्रेरणा बताकर अंधविश्वास के सहारे आकर्षक वनाया जा सकता है परन्तु उपयोगी और सार्थक नहीं बनाया जा सकता। सत्य, अहिंसा और धर्म की उस धारणा को मनुष्य समाज ने जिस व्यवस्था की सहायता और रक्षा के लिये गढ़ा था, उसका उपयोग वह कर चुकी है। मनुष्य समाज उसका सार ग्रहण कर चुका है। अब वह केवल निस्सार फोक के समान है। उसे समाज के अंग में लिपटाये रहने से वह समाज को सशक्त नही वना सकेगी। समाज की नई आती हुई अवस्था मे उपयोगी और सार्थक न होने के कारण वह न सत्य है, न अहिंसा, न धर्म ; क्योंकि वह समाज के लिये जीवन रक्षा और विकास का साधन नही वन सकती। बीते हुए समय की परिस्थितियों में पैदा हुई यह धारणा यदि समाज के मस्तिष्क से चिपटी

रहेगी, तो इसका परिणाम होगा कि जीवन रक्षा और विकास के मार्ग में, समाज की प्रगति में रुकावट आती रहेगी।

सत्य और धर्म की खोज

धर्म की खोज में मनुष्य खूब बावला बनता है। वह धर्म के अस्तित्व को अपने जीवन में अनुभव तो करता है परन्तु उसे पकड़ नहीं पाता। ठीक उसी तरह जिस तरह कस्तूर-हिरन कस्तूरी की सुगंध को अनुभव कर उसे पाने के लिये उल्टी-सीधी छलाँगे लगाता है परन्तु पा नहीं सकता। जनसाधारण के विश्वास के अनुसार कस्तूरी रहती है, हिरन के पेट मे ही। वही अवस्था मनुष्य के धर्म की भी है। धर्म जीवित रहने का प्रयत्न है। यह धर्म मनुष्य के शरीर में ही रहता है, परन्तु वह उसकी खोज करता है, न जाने कहाँ-कहाँ? मंदिर, मसजिद, गिरजे में और अनन्त, अनादि, शाश्वत, सत्य परमेश्वर में। इस सब काल्पनिक धर्म की प्रतिष्ठा करके भी धर्म मनुष्य के अपने प्रयत्न और शक्ति में ही रहता है, क्योंकि जीवन का वह उद्देश्य जिसकी पूर्ति के लिये धर्म का साधन मुहय्या किया जाता है, मनुष्य की शक्ति और प्रयत्न से ही पूरा होता है।

धर्म क्या है; यह प्रश्न बार-बार क्यों उठता है? इसलिये कि धर्म को वास्तव में ही बार-बार नये रूप में निश्चित करने की आवश्यकता पड़ती है। एक प्रकार की परिस्थितियो में जीवन के लिये रक्षा और विकास का एक क्रम तैयार कर धर्म के नाम से पेश किया जाता है। परिस्थितियों के बदल जाने पर नये ढाँचे में वह क्रम ठीक नहीं बैठता, इसलिये नये कार्य-क्रम की ज़रूरत पड़ती है और धर्म के विषय में विवाद आरम्भ हो जाता है। परिस्थितियों के अनुसार बदलनेवाले धर्म के अतिरिक्त क्या धर्म का कोई ऐसा मूलतत्व भी है, जो बदलते हुए धर्म के कार्य-क्रम की बुनियाद में स्थिर रहता

है ? धर्म के इस मूलतत्व की पहचान बताने के लिये धर्म गुरुओं और नीतिज्ञो ने उपदेश दिया है।

"आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्यमेतत पशुभिर्नराणाम्,
धर्मोहि तेशामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिसमाना।"

खाना पीना, नींद लेना, संतानोत्पत्ति यह सब तो मनुष्यों और पशुओ में समान हैं। मनुष्य की विशेषता यह है कि उसमें 'धर्म' और अधिक है। उसके न होने से मनुष्य वेसींग और पूँछ का पशु है। इस मूलभूत धर्म से हमारे ऋषियों का अभिप्राय क्या है; सो उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। शायद उनका अभिप्राय रहा हो कि पशु तो प्रकृति में पैदा होकर जैसी अवस्था और परिस्थिति पाते हैं, उसके आधीन रहकर जीवित रहने का प्रयत्न करते जाते हैं। परन्तु मनुष्य कार्य-क्रम बनाकर जीवन को चलाता है। वह कौन काम है, जिसे पशु नहीं करता और मनुष्य करता है ? इस प्रश्न का स्पष्ट और क्रियात्मक उत्तर दिया है, समाजवाद के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक रूप देनेवाले विद्वान् कार्ल मार्क्स ने। मार्क्स का कहना है—पशु जिन प्राकृतिक अवस्थाओं मे पैदा होते हैं, जब तक सम्भव होता है, उन्हीं मे निर्वाह करते हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों के बदलने पर वे अपने जीवन का क्रम बदलने की चेष्टा करते हैं और स्वयं भी बदल जाते हैं। पशुओ को प्रकृति मे जीवन के साधन जैसे मिलते हैं, उनका प्रयोग कर 'वे जीवन रक्षा किये जाते हैं परन्तु मनुष्य अपने लिये जीवन के साधन, या जीवन के लिये आवश्यक पदार्थों को पैदा करने के साधन स्वयं उत्पन्न करता है। यह है अन्तर मनुष्य और पशु में जो मनुष्यत्व की नीव है, मनुष्य के धर्म का मूलतत्व है। इस सत्य को आधार बनाकर चलने से आध्यात्मवाद और काल्पनिक धर्म की बुनियाद पर खड़ा दर्शन शास्त्र, जिसका कि गाधीवाद सिसकता हुआ रूप है, क्रियात्मक और कर्मशील दर्शन में बदल जाता है। जिस दर्शन

शास्त्र में मनुष्य विधना—अनादि, अनन्त, शाश्वत शक्ति के हाथ का खिलौना न रहकर, अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता बन जाता है।

मनुष्य अपने जीवन के साधनों या पैदावार के साधनों को स्वयं बनाता है, यह मामूली बात नहीं। इस शक्ति से मनुष्य अन्य जीवों की भाँति प्रकृति की दया पर निर्भर नहीं रहता। अन्य जीवों के लिये परिस्थिति का अर्थ है, भौतिक और प्राकृतिक परिस्थितियाँ। मनुष्य के लिये परिस्थिति का अर्थ भौतिक और प्राकृतिक परिस्थितियों के इलावा उन परिस्थितियो से भी है, जिन्हे मनुष्य स्वयम् तैयार कर लेता है। मनुष्य द्वारा तैयार की गई परिस्थिति से अभिप्राय उसके बनाये पैदावार के साधनों, उनके विकास और समाज की व्यवस्था से है। पैदावार और बँटवारे की व्यवस्था और साधनों में परिवर्तन आने से मनुष्य की परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, उसके जीवन-निर्वाह का ढंग बदल जाता है। वह न केवल अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के नये साधन बनाता है, बल्कि नयी आवश्यकतायें भी बनाता जाता है। इस परिवर्तन से उसके जीवन का ढंग बदले बिना नहीं रह सकता। प्रत्येक अवस्था में अपनी बनाई परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य अपने लिये व्यवस्था भी बना लेता है। परिस्थितियाँ अर्थात् जीवन निर्वाह के साधन और ढंग बदलने पर व्यवस्था अर्थात् व्यवहार के तरीके और मनुष्यों के परस्पर सम्बन्ध भी बदल जाते हैं। व्यवस्था का अर्थ है, मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से और सामाजिक रूप से किस प्रकार आचरण करना चाहिये, यही सत्य या धर्म का क्रियात्मक और व्यवहारिक रूप है।

परिस्थितियो के अनुसार सत्य या धर्म का क्रियात्मक रूप बदलते रहना आवश्यक है। अलबत्ता सत्य-धर्म का मूल प्रयोजन, मनुष्य की जीवन रक्षा और विकास, सदा एक सा बना रहता है। इसके साथ ही

इस विषय में सन्देह नही रह जाता कि धर्म या सत्य मनुष्य अपने उपयोग के लिये स्वयम् ही बनाता है। धर्म या सत्य चाहे वह परमेश्वर हो या कुछ और मनुष्य के लिये ही है। मनुष्य सत्य, धर्म या भगवान् के लिये नही। इस सत्य को फ्रास के फिलासफर वोल्टेयर ने यह कह कर स्वीकार किया था, कि यदि परमेश्वर न भी हो, तो उसे बनाये रखना चाहिये क्योंकि उसका विचार मनुष्य को न्याय के मार्ग पर क़ायम रखता है।

यह आश्चर्य है कि मनुष्य स्वयम् ही उचित मार्ग का निश्चय करे और उस पर क़ायम रहने के लिये ईश्वर का विचार साधन रूप से तैयार कर सके, परन्तु अपनी बुद्धि से अपने हित के मार्ग पर क़ायम न रह सके। वोल्टेयर का यह तर्क और उन सब लोगों की ईश्वर पर विश्वास रखने की दलीलें, जो ईश्वर विश्वास द्वारा मनुष्य समाज को न्याय के मार्ग पर रखना चाहती हैं, ईश्वर विश्वास का एक दूसरा ही प्रयोजन प्रकट करती हैं। अर्थात् जो लोग विद्वान् हैं, शक्ति सम्पन्न हैं, उनके लिये ईश्वर का होना न होना बराबर है। ईश्वर का भय या विश्वास उन्ही लोगो के लिये आवश्यक है, जो सत्य, धर्म और उचित को स्वय नही पहचान सकते। सत्य धर्म और उचित को कौन पहचान सकता है, और कौन नहीं पहचान सकता ; यह बात बहुत हद तक इस बात पर भी निर्भर करती है, कि सत्य, धर्म और उचित क्या है, और उसे निश्चित किसने किया है। जो व्यक्ति या श्रेणी सत्य, धर्म, उचित और न्याय का निश्चय करती है, सत्य धर्म और न्याय को समझने में कोई कठिनाई उस श्रेणी को नहीं हो सकती। क्योंकि सत्य, धर्म और न्याय स्वयं उन्हीं की इच्छा के अनुसार, स्वयं उन्हीं के मस्तिष्क से, उनकी आवश्यकताओं और हितों को पूरा करने के लिये पैदा होते हैं। इस प्रकार के धर्म और न्याय का पालन करने के लिये इन लोगो को किसी भय की आवश्यकता नहीं, न समाज मे क़ायम शासन की, न ईश्वर की आज्ञा की।

समाज में क़ायम शासन और ईश्वर की आज्ञा द्वारा धर्म और न्याय का पालन उन्हीं लोगों से कराने की आवश्यकता होती है, जो समाज के शासन में अपना लाभ नहीं देखते। जिनका शोषण करने के लिये उन्हें वश में रखने की आवश्यकता होती है। दूसरी श्रेणी को वश में रखकर, शोषण करनेवाली श्रेणी अपनी स्थिति और अधिकार बनाये रखने के लिये ही सरकार क़ायम करती है। यह श्रेणी अपने हित की व्यवस्था की रक्षा के लिये नियम बनाती है और इन नियमों को अपनी शक्ति द्वारा समाज के अधिकांश भाग पर लागू करती है।

जैसे और शक्तियाँ हैं, वैसे एक शक्ति विश्वास की भी है। इस शक्ति को मनुष्य ही तैयार करता है और स्वयं इसके आधीन हो जाता है। यह विश्वास ही ईश्वर की आज्ञा है। शासक और शोषक श्रेणी और शक्तियों के साथ इस शक्ति का भी उपयोग अपने व्यवहार के लिये करती हैं। शोषितों को समझाया जाता है कि भगवान् ने समाज में व्यवस्था क़ायम की है। जिस व्यक्ति और श्रेणी को जो स्थान उन्होंने दिया है, उसे उस स्थान पर ही रहना चाहिये। मालिक को पिता के स्थान पर रहकर और सेवक को आश्रित या पुत्र के स्थान पर रहकर अपना-अपना कार्य और धर्म पूरा करना चाहिये।

ईश्वर के नाम से समाज की व्यवस्था को मानकर चलने का उपदेश भी समय-समय पर, जिस श्रेणी का शासन या आधिपत्य समाज में होता है, उसी श्रेणी के हित के अनुसार बदलता रहता है। जिस समय समाज में ग़ुलामी की प्रथा थी, ईश्वर की आज्ञानुसार ग़ुलाम के लिये यही धर्म था कि वह मालिक की सेवा में अपने प्राण अर्पण कर दे। उस समय के धर्माचार्यों और न्यायाचार्यों की दृष्टि में ग़ुलामों से पशुओं की भाँति काम लेकर उन्हें मनुष्यों के अधिकारों से वंचित रखना कोई अन्याय नहीं था। उस समय के न्यायप्रिय

विद्वान् सुक्रात, जिसने न्याय और विचार स्वाधीनता के लिये स्वयं विषपान कर अपने प्राण दे दिये, ग़ुलामी को न्यायोचित और सभ्यता के विकास के लिये आवश्यक समझता था। सुक्रात यूनानी समाज के मालिकों की श्रेणी का व्यक्ति था। अपने समाज का हित ही उसकी दृष्टि में न्याय था।

जीवन की रक्षा और उसे विकास की ओर ले जाने की व्यवस्था के लिये ही न्याय की प्रणाली निश्चित की जाती है। समाज में आधिपत्य करनेवाली श्रेणी अपने हित और स्वार्थ की दृष्टि से ही न्याय की धारणा निश्चित करती है। इसे पक्षपात भी नहीं कहा जा सकता। आधिपत्य करनेवाली श्रेणी की दृष्टि में उस श्रेणी की जीवन रक्षा और विकास का अवसर देनेवाली व्यवस्था ही न्याय, सत्य और धर्म है। इस न्याय, सत्य और धर्म के लिये वे या उस श्रेणी के कुछ लोग प्राण तक न्योछावर कर सकते हैं। परन्तु इन लोगों के इस बलिदान से भी ऐसी व्यवस्था, जो दूसरों का शोषण करती हो, न्याय नहीं बन सकती।

इसके विपरीत शोषित या दलित श्रेणी शक्ति संचय कर जब समाज की व्यवस्था में परिवर्तन कर देती है, तब सत्य, धर्म, न्याय की धारणा और ईश्वर की आज्ञा बदल जाती है। ठाकुरशाही* के समय राजा और ठाकुर को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। जनसाधारण पर उन्हें शासन करने का अधिकार भगवान् द्वारा दिया गया समझा जाता था। परन्तु जब मध्यम वर्ग ने क्रान्ति कर शासन की बागडोर अपने हाथ में लेली, समाज का शासन उन्हीं लोगों के हितों की दृष्टि से होने लगा। इस परिवर्तन से सत्य, धर्म और न्याय की धारणा का पुराना रूप बदल गया। पहले विश्वास किया जाता था, राजा या सरदार भगवान् के प्रतिनिधि हैं और उन्हें प्रजा

* ठाकुरशाही से अभिप्राय सामन्तकाल से है।

पर शासन करने का अधिकार भगवान् का दिया है। राजा के विरुद्ध आवाज़ उठाना महापाप है। प्रजातंत्र व्यवस्था क़ायम होने पर कहा जाने लगा, भगवान् ने सब मनुष्यों को एक समान पैदा किया है। स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। गुलामी की प्रथा महापाप और अत्याचार है। इसी प्रकार आज हमारे समाजमें पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी का प्रभुत्व हैं, इसलिये समाज की व्यवस्था में न्याय सम्पत्ति की रक्षा के नियमों के अनुसार होता है।

पूँजीवाद का आधार है, सम्पत्ति पर व्यक्ति के स्वामित्व का अधिकार। इसलिये इस समाज में किसी की भूमि से एक तिनका तोड़ लेना पाप और हिंसा है। किसी की संचित सम्पत्ति में से एक चावल उठा लेना अन्याय और अपराध है। परन्तु हज़ारो मनुष्यों से अधिक मूल्य का काम कराकर, उन्हे उनके परिश्रम का कम मूल्य देकर, उनके परिश्रम के फल की चोरी कर लेना पाप नही। पूँजीवादी और ज़मीदारी प्रणाली का सत्य, अहिंसा, धर्म और न्याय इस एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। मौजूदा समाज में इसी सत्य, अहिंसा, धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा है और इस धर्म पर भगवान् की स्वीकृति की मोहर लगी हुई है। गाधीवाद इसी सत्य, अहिंसा और धर्म की प्रतिष्ठा से समाज में सुख शान्ति और न्याय क़ायम करना चाहता है। परन्तु पूँजीपति और ज़मीदार श्रेणी की सत्य अहिंसा गाधीवाद का समर्थन पाकर भी, उस श्रेणी के लिये सत्य अहिंसा नही बन सकती, जिनका शोषण इस व्यवस्था द्वारा हो रहा है। क्योंकि इस सत्य, अहिंसा से शोषित श्रेणियाँ—किसान, मज़दूर और मध्यम श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों के जीवन की रक्षा और विकास नही हो सकता। यह श्रेणी यदि जीवन रक्षा और विकास का अधिकार चाहती है, तो उसे इस उद्देश्य को पूर्ण करनेवाली सत्य और अहिंसा को स्थापित करना होगा। यह सत्य वर्तमान मनुष्य समाज की परिस्थितियो,

उसके जीवन निर्वाह के साधनो और ढंग को देखकर ही निश्चित करना होगा।

आध्यात्मिक सत्य-अहिंसा

मनुष्य क्या करना चाहता है, क्या उचित समझता है, इस बात का प्रभाव व्यक्ति के जीवन और समाज की व्यवस्था पर बहुत हद तक पड़ता है। मनुष्य किस बात को चाहता है उचित-अनुचित समझता है, इसमें उसकी विचारधारा का हाथ रहता है। समाज अपने बीते हुए जीवन के अनुभवो और तर्क के आधार पर भविष्य में अपने लिये राह निश्चित करता है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ भी मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालती हैं, परन्तु उससे अधिक प्रभाव मनुष्य द्वारा स्वयम् तैयार की गई परिस्थितियों का उस पर पड़ता है। मनुष्य की विचारधारा, उसकी न्याय-अन्याय की धारणा भी उसकी परिस्थितियो का अंग होती है। किन सिद्धान्तों पर चल कर मनुष्य को अपना मार्ग निश्चित करना चाहिए, इस विषय मे दो प्रकार के विचार हैं। एक पद्धति को आध्यात्मवाद और दूसरी को भौतिकवाद कहा जाता है।

आध्यात्मवाद सृष्टि और मनुष्य से परे अलौकिक शक्ति मे विश्वास रखता है। उस शक्ति को ईश्वर का नाम दिया गया है। ईश्वर की परिभाषा और परिचय कई प्रकार से दिया जाता है परन्तु हम यहाँ गाधीवाद की परिभाषा को लेकर ही चलेंगे, क्योंकि गाधीवाद का यह दावा है कि ईश्वरवादी सम्प्रदायो मे किसी प्रकार के मतभेद की ज़रूरत नहीं। गाधीवाद के अनुसार ईश्वर की परिभाषा एक दफे हम ऊपर दे आये हैं, "ईश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहनेवाला, विश्व का आत्मारूप अथवा आधाररूप और उसका कारण है; वह चेतन अथवा ज्ञानस्वरूप है। उसी का एक सनातन अस्तित्व है।

शेष सब नाशवान हैं।" वास्तव में सृष्टि और सृष्टि के अंग मनुष्य को ईश्वर ने बनाया है या नहीं; ईश्वर ने नहीं बनाया, तो बनाया किसने है; ईश्वर को किसने बनाया है; यदि ईश्वर स्वयम् पैदा हो सकता है, तो सृष्टि स्वयम् पैदा क्यों नहीं हो सकती; आदि प्रश्नों को छोड़कर हम केवल यह देखने का यत्न करेंगे कि सृष्टि और मनुष्य समाज के क्रम में ज्ञानस्वरूप, चेतन और अनादि, अनन्त परमेश्वर के विधान का आभास मिलता है या नहीं? सृष्टि की रचना और विकास में भगवान् या किसी अलौकिक शक्ति का विधान होने का अर्थ है, कि सृष्टि की रचना एक निश्चित उद्देश्य से की गई है और एक निश्चित क्रम पर सृष्टि का काम चल रहा है। परन्तु सृष्टि और मनुष्य का इतिहास इस बात का समर्थन नहीं करता। न केवल सृष्टि किसी निश्चित उद्देश्य से निश्चित मार्ग पर नही चल रही, बल्कि ज्ञानस्वरूप अनादि, अनन्त परमेश्वर द्वारा तैयार किये प्रोग्राम पर चलने से जैसी संघर्षहीन पूर्णता सृष्टि या मनुष्य समाज में होनी चाहिए थी, वह नही है। इसके विपरीत हम सृष्टि और समाज में सब ओर संघर्ष के द्वारा विकास होता देखते हैं।

जहाँ संघर्ष और विकास होगा, वहाँ पूर्णता या एक समान रहने का गुण नहीं हो सकता। विषमता और अपूर्णता को दूर करने के लिये ही संघर्ष और विकास होता है। सृष्टि में और मनुष्य जीवन में संघर्ष और विकास है, पूर्णता और संतोष नहीं है, इस बात को बड़े से बड़ा ईश्वरवादी भी अस्वीकार नहीं कर सकता। ईश्वर की परिभाषा के गुण सृष्टि में कहीं मौजूद नहीं, तो ईश्वर के सृष्टि का आधार होने का अर्थ क्या; यह बात केवल ईश्वरवादियों और गांधीवादियों की कल्पना ही बता सकती है। यदि यह मान लिया जाय कि सर्व शक्तिमान ईश्वर की इच्छा से ही संघर्ष और विषमता है, तो इस कुतर्क को बेमानी ज़िद्द के सिवा और क्या कहा जायगा; क्योंकि यह दलील ईश्वर के प्रभाव का

कोई प्रमाण नहीं दे सकती। यदि मनुष्य की अपूर्णता, त्रुटियो और संघर्ष को भी ईश्वर की ही इच्छा माना जायगा, तो मनुष्य के लिये अपूर्णता, त्रुटियों और संघर्ष से बचने की कोई राह नही रह जाती। मनुष्य समाज मे होनेवाली हिंसा, विरोध, अत्याचार और पाप से मुक्ति प्राप्त करने के यत्न एक विफल मूर्खता हो जायँगे। मनुष्य का उनसे मुक्ति पा सकना सम्भव ही नही, क्योकि यह सब तो उसी शक्ति की इच्छा और विधान से है जो सृष्टि का आधार है, सर्व शक्तिमान है और इसे बनानेवाला है। गाधीवाद एक ओर असत्य, हिंसा और पाप से मुक्ति प्राप्त करने का उपदेश देता है, दूसरी ओर मनुष्य को ईश्वरवाद और आध्यात्मवाद की रस्सी से बाँध ईश्वर के विधान से पैदा होगये सघर्ष, विरोध, हिंसा और पाप के भँवर में असहाय छोड देता है।

सब कुछ भगवान् की इच्छा से है, यह मान लेने के बाद मनुष्य को व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से सुधारने और उन्नत बनाने के प्रयत्न का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उसे सत्य, धर्म और अहिंसा का उपदेश देना भी व्यर्थ है ; क्योंकि मनुष्य तो कठपुतली मात्र है, जिसका धागा भगवान् खींचते हैं। कठपुतली यदि ठीक ढग से नहीं नाचती, उसके हाथ पैर उलटे और बेवक़् चलते हैं, तो इसका उत्तरदायित्व रस्सी खींचनेवाले पर है, कठपुतली पर नही। भगवान् को सृष्टि का रचयिता और संचालक मान लेने पर भगवान् की इच्छा ही सत्य और धर्म मानी जायगी और भगवान् की इच्छा ही मनुष्य के दुष्कृत्यों का कारण ठहरेगी ; तो फिर सत्य, धर्म और मनुष्य के पाप में विरोध कहाँ रहता है ? यही कहना कठिन हो जायगा कि कौन काम सत्य तथा धर्म के अन्तरगत है और कौन काम पाप के। इस प्रकार की विचारधारा से प्रभावित होकर ही मनुष्य निराश होकर कहने लगता है, सब कुछ भगवान् की इच्छा और लीला मात्र है। यह संसार और मनुष्य के प्रयत्न सब

माया और भ्रम हैं, मनुष्य का उद्देश्य केवल ईश्वर से साक्षात्कार करना ही होना चाहिए। यही तो गाधीवाद है, जिसकी जड में संघर्ष से भय की निराशावादी और हतोत्साह मनोवृत्ति मौजूद है।

संसार और संसार के संघर्ष को केवल भगवान् की माया समझने की विचारधारा का परिणाम होता है कि मनुष्य शान्ति और संतोष की खोज में संघर्ष न कर कल्पना करने लगता है। संसार की वास्तविकता को वह माया समझकर, उससे उदास होकर निष्क्रियता में जीवन की सफलता समझने लगता है। निष्क्रियता का दूसरा नाम है त्याग। संसार में संघर्ष है, संघर्ष में कठिनाई और विरोध भी सामने आता है। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जायगा कि संसार नश्वर, मिथ्या और माया ही है, अनन्त और अनादि केवल भगवान् हैं, तो वह मिथ्या और माया के लिये संघर्ष और कठिनाई का मुक़ाबिला कर संसार में आगे बढने की चेष्टा क्यों करेगा? क्यों न पूर्ण भगवान् की गोद में सिर छिपा, कल्पना में ही सुख ढूँढ़ने लगेगा? ऐसी भावना व्यक्ति को समाज के लिये अनुपयोगी और बोझ बना देती है। यह भावना जिस समाज में घर कर जाती है, वह समाज ससार के संघर्ष में प्रकृति और परिस्थितियों पर विजय पाने का उत्साह छोड़, एक काल्पनिक नशे से शान्ति और संतोष प्राप्त करने के स्वप्न देखने लगता है। ऐसे समाज में वीरता संघर्ष द्वारा आगे बढ़ने में नही, बल्कि कुछ न कर, कष्ट सहने और कष्ट को कष्ट न समझने मे ही समझी जाती है। ऐसे समाज में कष्ट के कारणों को दूर कर जीवन को समर्थ बनाने और आवश्यकताओं को पूर्ण करने को 'भोग' समझा जाता है। आवश्यकताओं को कम करने और अपनी आवश्यकताओं को भुलाकर अपने आपको सुखी समझने और ऐसा ही विश्वास करने का उपदेश दिया जाता है।

समाज में ऐसी मानसिक अवस्था या विचारधारा उस समय आ जाती है जब समाज किसी एक मंज़िल की परिस्थितियों में जितनी

उन्नति सम्भव होती है, कर लेता है और विकास द्वारा आगे बढ़ने के मार्ग मे अड़चनें आने लगती हैं। इन अड़चनों के कारण स्वाभाविक तौर पर समाज मे असंतोष अनुभव होने लगता है और सघर्ष की आशंका पैदा हो जाती है। असंतोष दूर हो सकता है, संघर्ष द्वारा अड़चनों को दूर करने से। अड़चनो को दूर करने के लिये ज़रूरत रहती है कि समाज में शक्ति, समृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त करने की भावना हो। यदि असंतोष को दूर करने का उपाय त्याग और मुक्ति की खोज समझा दिया जायगा, तो समाज असतोष को दूर करने के लिये संघर्ष द्वारा विकास के प्रयत्न को छोड़ शिथिलता की ओर जाने लगेगा।

समाज की व्यवस्था मे अनुभव होनेवाली अड़चनों को परिवर्तन या क्रान्ति द्वारा ही दूर किया जा सकता है। क्रान्ति समाज के असंतुष्ट लोग ही करते हैं। समाज की शासक श्रेणी, जो मौजूदा व्यवस्था से संतुष्ट रहती है, क्रान्ति का विरोध करती है। समाज मे परिवर्तन को रोकने के लिये यह श्रेणी सदा ही आवश्यकताओ को पूरा करने की निन्दा और त्याग और संतोष द्वारा काल्पनिक आत्मिक शांति पाने और स्वर्ग प्राप्त करने का उपदेश देती है, ताकि उनके हाथ से अधिकार छीनने का प्रयत्न न किया जा सके। इस प्रकार की भावना से शासक श्रेणी और धर्माचार्य श्रेणी, जो समाज की ऐसी ही भावनाओं पर जीवित रहती है, दोनों का ही लाभ होता है। भारतवर्ष में ऐसा ही हुआ। खेती के युग की व्यवस्था में क़बीलो द्वारा शासन पद्धति चलाकर भारतीय समाज जितनी उन्नति सम्भव थी कर चुका, तब समाज मे असतोष के लक्षण दिखाई देने लगे। क़बीलों की व्यवस्था मे ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। राजा को ब्राह्मण के इशारे पर नाचना पड़ता था।*

* पुराणों तथा इतिहास में ब्राह्मणों और क्षत्रियों में स्थान-स्थान पर युद्ध होने के जो वर्णन मिलते है, वे क्षत्रियों के विद्रोह की ओर संकेत करते हैं।

ब्राह्मण धर्म का आवरण पहन कर भारतीय समाज में एक श्रेणी राज्य कर रही थी। बौद्ध धर्म की क्रान्ति के रूप में निम्न श्रेणी के क्षत्रियों, शूद्रों तथा सर्व साधारण ने असंतोष प्रकट कर व्यवस्था में परिवर्तन करने का प्रयत्न शुरू किया। उस समय असंतोष और विद्रोह की लहर को दबाने के लिये गीता उपनिषदो तथा दूसरे धार्मिक ग्रन्थो के रूप में आध्यात्मिकता की एक लहर आयी, जिसने सासारिकता को व्यर्थ माया बताकर सत्य और धर्म के पालन-त्याग, सतोष-द्वारा मोक्ष की राह बता सामाजिक संघर्ष को शिथिल कर दिया। बौद्ध धर्म समानता और अहिंसा का उपदेश देता था। बौद्ध धर्म की अहिंसा निम्न श्रेणियो की अधिकार की माँग थी, जो शक्ति प्रयोग और वर्ण व्यवस्था के अधिकारों से होनेवाली हिंसा को मिटा देना चाहती थी। इस अहिंसा का प्रयोजन था, समाज से उन विषमताओं और अड़चनों को दूर करना; जिन्होंने सर्व साधारण जनता को बेबस कर दिया था। यह अहिंसा सासारिक थी। ब्राह्मण धर्म ने इसे सासारिकता को आध्यात्मिकता से दबा कर जनता में संतोष और त्याग की शिथिलता का प्रचार किया। परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज संघर्ष के मार्ग से हट गया और उसका विकास भी शिथिल हो गया। इस आध्यात्मिकता ने भारत में ब्राह्मण धर्म की शरण ले राज्य करनेवाले समाज के अधिकारों की रक्षा तो उस समय करदी परन्तु सर्व साधारण जनता को निस्तेज और शिथिल कर दिया। इसका परिणाम हुआ देश आनेवाले विदेशी आक्रमणों का मुकाबला सफलता पूर्वक न कर सका।

इसके पश्चात् आध्यात्मिकता की प्रबल लहर इस देश में मुग़लों के राज्य के अन्तिम भाग में आई। इस समय के आध्यात्मिक नेता तुलसी, कबीर, नरसी भगत, आदि थे। यह वह समय था, जब मुग़लों के शासनकाल में ठाकुरशाही की दुरावस्था के कारण देश की जनता अपने जीवन के मार्ग में अड़चनें अनुभव कर रही थी। इसी समय योरुप में

भी ऐसी अवस्था आई। योरुप के समाज ने अपने मार्ग में आनेवाले अन्तरविरोधों और अड़चनो को राजनैतिक क्षेत्र में प्रजातंत्र क्रान्तियों द्वारा तथा आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति कर दूर किया। योरुप में भी क्रान्ति की भावना को दवा देने के लिये त्याग का उपदेश देने-वाले अनेक सम्प्रदाय जेसुइस्ट्स, क्वेकर्स, प्रोटस्टेन्ट्स, कालविनिस्ट्स आदि पैदा हुए परन्तु औद्योगिक विकास के प्रवाह के सामने रुक न सके।

भारत में सर्वसाधारण इतने जागरित और संगठित न थे कि ठाकुर-शाही के शासन से अपने को छुड़ा पाते। औद्योगिक विकास भी यहाँ ऐसे समय नही हुआ इसलिये उन्होंने अपने, असतोष, दुख और संकट को भक्ति, त्याग, वैराग्य और मोक्ष के भँवर मे डुबोकर शान्ति ग्रहण करनी चाही।

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सन्तोष और सफलता प्राप्त करने के लिये संघर्ष द्वार अड़चनों को दूर करना आवश्यक होता है। श्रेणियों का सघर्ष भी सामाजिक जीवन का अंग है। इस संघर्ष से कतरा कर काल्पनिक सतोष द्वारा अपने आप को सफल समझने के लिये आध्यात्मिकता और वैराग्य की शरण ली जाती है। आध्यात्मिकता और वैराग्य समाज को सघर्ष और विकास के मार्ग से हटा देते हैं।

समाज की शासक और सम्पत्ति की मालिक श्रेणी स्वयं धन सम्पत्ति, और शासन का अधिकार समेट कर भी सदा वैराग्य, आध्यात्मिकता और महात्मापन का आदर करती है। यह श्रेणी परिवर्तन से डरती है, क्योंकि परिवर्तन इन्हे हाकिम और मालिक की स्थिति से हटा देगा। गांधीवाद समाज मे आते हुए परिवर्तन को रोकने के लिये पुराने समय की मरी हुई नैतिकता की किलावन्दी कर ठाकुर श्रेणी के अधिकारों की रक्षा करना चाहता है, इसीलिये इस देश की मालिक श्रेणी उसके प्रचार मे सहायक वन रही है।

कांग्रेस की गांधीवादी नीति

सत्य-अहिंसा का क्रियात्मक रूप

गाधीवाद का रूप देकर आध्यात्मवाद की लहर भारत में उठाने का जो प्रयत्न किया जा रहा है, उसके राजनैतिक और आर्थिक कारण बहुत स्पष्ट हैं। भारत की मौजूदा अवस्था में एक राजनैतिक और आर्थिक संघर्ष चल रहा है। इस राजनैतिक संघर्ष में अनेक शाखायें फूट निकली हैं, परन्तु इसका आरम्भ हुआ था भारत में विदेशी ग़ुलामी के स्थान पर भारतवासियों का राज्य क़ायम करने की भावना से। विदेशी ग़ुलामी बुरी चीज़ है, इसमें तो किसी को भी संदेह नही।

आज़ादी मिले किस प्रकार? काग्रेस आज़ादी के लिये प्रयत्न करने वाली सबसे बड़ी संस्था है, परन्तु उसका मार्ग विचित्र है। काग्रेस का इतिहास अनेक महत्त्व पूर्ण बातों की ओर हमारा ध्यान दिलाता है। काग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ भारत की ऊँची श्रेणियों में। काग्रेस की शुरू की मॉगें थी, भारतीयों को भी ऊँचे सरकारी ओहदों में जगह मिले। अँग्रेज़ों की जगह भारतीय शासक और अफसर हो जाने के बाद उन्हे कोई आपत्ति या एतराज़ न रहता। सरकार के उद्देश्य के बारे में कोई शिकायत न कर वे लोग अँग्रेज़ों के प्रति पक्षपात से नाराज़ थे। उस समय की काग्रेस यदि किसी भारतीय को वायसराय बना सकती, तो स्वराज्य मिल गया समझा जाता। उस समय काग्रेस का उद्देश्य सरकार का भारतीय-करण (Indianisation) ही था। आज दिन भी काग्रेस का उद्देश्य वास्तव में बहुत हद तक यही है परन्तु उसमें और बहुत सी समस्यायें आ मिली हैं। काग्रेस की नीति और मॉगों में दूसरी अनेक बातें शामिल होने का कारण भारत की ऊँची

श्रेणी के दूसरे अंग व्यापारियों, ज़मीदारों आदि का उसमें शामिल हो जाना है। इस समय स्वराज्य का एक बिलकुल दूसरा अर्थ समझने वाली जनता भी देश में पैदा हो गई है परन्तु इस जनता का अधिकार अभी काग्रेस पर नहीं हो पाया है। इस जनता को काग्रेसी स्वराज्य का प्रतिद्वन्दी स्वराज्य मॉगनेवाला दल समझा जाता है।

भारत से विदेशी गुलामी दूर कर भारत मे अपना राज्य स्थापित करनेवाले संगठन मे भारत के व्यापारियों के सम्मिलित होजाने पर देश के लिये व्यापारिक सुविधा आदि की मॉगे भी पेश होने लगी, स्वदेशी का नारा भी बुलन्द हुआ। इन मॉगों के पूरा हो जाने का अर्थ है, भारत की पूँजीपति, ज़मींदार और सम्पत्ति की मालिक श्रेणियो के हाथ देश का शासन आ जाय। सम्पत्ति की मालिक श्रेणी सख्या मे वहुत छोटी है। यह श्रेणी देश की आबादी की एक फीसदी से अधिक नहीं। शेष निन्नानवे फ़ीसदी जनता सम्पत्ति और साधनों से हीन है। स्वराज्य केवल सम्पत्तिशाली लोगों के प्रयत्न से ही नहीं मिल सकता। इसके लिये तो सर्वसाधारण जनता की शक्ति की ज़रूरत है। ख़ासकर हमारे देश मे, जहाँ विदेशी सरकार पर दवाव डालने का उपाय केवल जनता की पुकार ही है। स्वराज्य का आन्दोलन तभी सफल हो सकता है जब कि भारत की ९९ फीसदी, साधनहीन निम्न श्रेणियाँ भी इस सघर्ष मे सम्पत्तिशाली श्रेणी का साथ दें। इस सत्य को लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने समझा। सर्व साधारण जनता को स्वराज्य के मोर्चे पर लाने के लिये उन्होंने नारा लगाया कि स्वराज्य भारतीय जनता का जन्म सिद्ध अधिकार है। इस नारे को लेकर महात्मा गाधी आगे वढ़े और उन्होने काग्रेस को जनता की शक्ति से सबल वनाया। महात्मा गाधी ने सात पैसे रोज़ कमानेवाले म दूर और गावों मे रहनेवाली किसान जनता के दुख का बखान कर देश की जनता की सहानुभूति काग्रेस के प्रति खींच ली।

भारत में विदेशी गुलामी के खिलाफ़ लड़नेवाली एक शक्ति भारत के आतंकवादी क्रान्तिकारी भी थे। अनेक कुर्बानियाँ करके भी वे कोई ठोस सफलता प्राप्त नहीं कर सके, क्योंकि उनका कार्य-क्रम देश की जनता को साथ लेकर नहीं चल सकता था। उनके काम राष्ट्रीय भावना के कारण थे, यह तो स्वयं सरकार ने भी स्वीकार किया। इन लोगो के उग्र राष्ट्रीय कार्यों को, जिनमें हिंसा और सशस्त्र विद्रोह भी शामिल थे, दबाने के लिये सरकार ने रौलट बिल के नाम से व्यापक और दमनकारी क़ानून बनाया। इस क़ानून का उद्देश्य न केवल हिंसात्मक राष्ट्रीय कार्यों को रोकना था, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय भावना की ही जड़ काट देना था। सरकार के इस राष्ट्रीय दमन ने मध्यम श्रेणी की राष्ट्रीय भावना को चोट पहुचाई और वे लोग सरकारी क़ानून के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करने के लिये तैयार हो गये। यह विरोध निःशस्त्र था। निःशस्त्र विरोध के अतिरिक्त और कोई दूसरा ढंग सार्वजनिक विरोध को प्रकट करने का था भी नहीं। सरकार ने पूरी शक्ति से इस विरोध का दमन किया जिसके परिणाम स्वरूप पंजाब के भयंकर हत्याकाड हुए। इस दमन के विरोध ने कांग्रेस की पुकार को जनता तक पहुँचा दिया। सरकारी दमन से छुटकारा पाने के लिये जनता का सार्वजनिक आन्दोलन विराट रूप में जारी हुआ। इस आन्दोलन का नेतृत्व सौंपा गया महात्मा गाधी के हाथ में, क्योंकि वे दक्षिण अफ्रीका में सार्वजनिक आन्दोलन का अनुभव हासिल कर चुके थे और सर्वसाधारण जनता के हृदय को खींच सकते थे।

सन् १९२० के कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन की कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। इस आन्दोलन का आरम्भ हुआ सरकार के उस दमन के विरोध में जो मध्यम श्रेणी के राजनैतिक दृष्टि से सचेत लोगों पर हो रहा था। इस आन्दोलन की माँगे स्पष्ट थीं। साधारणतः इनका अर्थ था, भारतवासियो को अपने देश पर शासन का अधिकार

मिले और भारत की व्यापारिक लूट बंद हो। इस आन्दोलन को लेकर शहरों में रहनेवाले मध्यम श्रेणी के लोग आगे बढ़े। महात्मा गाधी इसी श्रेणी पर भरोसा कर स्वराज्य की वैधानिक लड़ाई लड़ने चले थे। महात्मा गाधी ने राष्ट्रीय लड़ाई के मोर्चे पर सरकार के उपाधि धारी लोगों, वकीलों, सरकारी नौकरो, विदेशी सामान के व्यापारियों और स्कूल कॉलिजों के विद्यार्थियों को पुकारा। सरकार से असहयोग कर उसके काम को असम्भव कर देने का प्रोग्राम बना ताकि सरकार अपना काम चलता न देख इस श्रेणी की माँगों को पूरा करने के लिये मजबूर हो जाय। सरकार पर दबाव डालने के लिये आम जनता को भी सत्याग्रह के मोर्चे पर लाया गया। देश के किसानों और मज़दूरो से भी विरोध प्रदर्शन कर जेल जाने के लिये कहा गया ताकि सरकार का काम और अधिक कठिन हो जाय। किसानो, मज़दूरो से स्वराज्य के लिये त्याग कर जेल जाने के लिये तो कहा गया, परन्तु इन लोगों को अनुभव होनेवाली किसी कठिनाई को दूर करने का ज़िक्र कार्य-क्रम मे न था। एक गोल-मोल वायदा ज़रूर था, कि देश का शासन भारतवासियो के हाथ मे आ जाने पर देश के सभी निवासियो के सब कष्ट, भूख, दरिद्रता, अशिक्षा बेकारी मिट जायँगे।

देश की साधन सम्पन्न श्रेणी के लिये और उसकी आधीनता में मध्यम श्रेणी के लिये शासन का अधिकार प्राप्त करने के इस कार्य-क्रम को आम जनता की क़ुर्बानी के बल पर सफल बना लेने का महात्मा गाधी को इतना दृढ विश्वास था, कि उन्होंने एक वर्ष में स्वराज्य लेकर दिखा देने की प्रतिज्ञा करली। मुस्लिम जनता को आन्दोलन में समेटने के लिये ख़िलाफ़त का प्रश्न उठाया गया। जिस प्रकार देश की शेष जनता के सामने उनकी अवस्था में सुधार करने की कोई माँग रखे बिना उन्हें केवल देशभक्ति की भावुकता पर भड़काने की

कोशिश की गई, उसी प्रकार मुस्लिम जनता को भी धर्म के नाम पर उभारने का यत्न किया गया। ख़िलाफ़त से इस देश के मुसलमानों का कुछ बनता बिगड़ता न था। न इस देश का ख़िलाफ़त के प्रश्न से कोई सम्बन्ध था, स्वयं टर्की के मुसलमानों को ही ख़िलाफ़त से कुछ लाभ न था बल्कि ख़िलाफ़त की 'आध्यात्मिक' हुकूमत से छूट टर्की योरुप की एक शक्ति बन सका है। अल्लाह से मिले, अधिकार पर हुकूमत चलनेवाले ख़िलाफ़त के स्वेच्छाचारी और विकास विरोधी शासन का जुआ टर्की की प्रजा की गर्दन से हटना किस प्रकार अन्याय हुआ, यह भी समझा नहीं जा सकता। परन्तु महात्मा गांधी इस अन्याय का विरोध करने के लिये अपने प्राण देने का एलान कर रहे थे। टर्की से ख़लीफ़ा के निकाले जाने में केवल एक ही अन्याय था कि ख़लीफ़ा साहब उस श्रेणी के प्रतिनिधि थे जो भगवान् के विधान के अनुसार जनता पर शासन करती हैं। सम्पत्ति, साधनों और जायदाद के मालिकों के अधिकार पर चोट महात्मा गांधी कभी सहन नहीं कर सकते।

सन् १९२० के सत्याग्रह में पूँजीपति और मध्यम श्रेणी के राजनैतिक आन्दोलन को सफल बनाने के लिये जनता की धार्मिक भावना को ख़ूब उभारा गया। विदेशी कपड़े के ख़िलाफ़ प्रचार में एक ज़बरदस्त दलील यह थी, कि उसमें गाय और सुअर की चर्बी का उपयोग होता है। इस आन्दोलन का प्रमुख मोर्चा था, विदेशी कपड़े का बायकाट; जिसकी बदौलत देशी व्यापारियों को बहुत लाभ हुआ और इन लोगों ने भी आन्दोलन को सफल बनाने के लिये दिल खोलकर रुपया दिया। कांग्रेस के लिये तिलक स्वराज्य फण्ड में एक करोड़ रुपये की माँग पूरी होने में कुछ भी समय न लगा।

साधन सम्पन्न और मध्यम श्रेणी के लिये स्वराज्य प्राप्त कर लेना जितना सरल काम महात्मा गांधी ने समझा था, उतना सरल वह न

था। गणित का हिसाब लगाकर तो यह बात सरल मालूम होती थी कि सरकारी अमल को चलानेवाली मध्यम श्रेणी यदि अपना सहयोग खींच ले और पूँजीपति श्रेणी देश के शोषण में अंग्रेज़ो को सहायता न दे, तो अंग्रेज़ों की शासन व्यवस्था की इमारत तुरंत गिर जायगी। व्यवहार में यह बात उतनी आसान न हुई, क्योंकि पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणियों का अस्तित्व विदेशी शोषण के ढाँचे पर ही निर्भर करता है और मध्यम श्रेणी सरकारी व्यवस्था मे सहयोग देकर निर्वाह करती है। स्वराज्य के प्रति उनकी भक्ति उन्हे अपने स्वार्थों का बलिदान करने के लिये तैयार न कर सकी।

असहयोग आन्दोलन की पुकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में पहुँचकर राजनैतिक जागृति तो पैदा कर दी परन्तु जिस श्रेणी पर यह आन्दोलन निर्भर करता था, उस श्रेणी के आगे न बढ़ सकने के कारण असहयोग इस मात्रा तक न हो सका कि सरकार बेकाम हो जाती। असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व बेशक साधन सम्पन्न और मध्यम श्रेणियाँ ही कर रही थीं परन्तु आन्दोलन को विराट रूप देने के लिये किसानो, मज़दूरों तथा निम्न मध्यम श्रेणी को भी उसमें समेटा गया। इन श्रेणियों में पहुँचनेवाली जागृति केवल राष्ट्रीयता की भावुकता तक ही परिमित न रही। विदेशी शासन मे सबसे अधिक संकट इन लोगों पर ही है, इसलिये स्वतंत्रता की ज़रूरत भी सबसे अधिक इन्हे ही है। इन लोगो की परिस्थितियों का सुधार केवल ऊपरी शासन सम्बन्धी अधिकार भारतवासियो को मिल जाने से नहीं हो सकता। स्वराज्य मिलने की आशा इन लोगो तक पहुँचने का प्रभाव यह हुआ, कि यह लोग अपनी असह्य अवस्था दूर करने के लिये क्रान्तिकारी परिवर्तन करने को तैयार हो गये। पूँजीपति, ज़मीन्दार और मध्यम श्रेणी का अधिकारो की माँग से चला आन्दोलन सुधारों की माँग के बजाय व्यवस्था में क्रान्ति का यत्न करने लगा।

बीस वर्ष पूर्व भारत में औद्योगिक विकास कम हो पाया था इस लिये संगठित मज़दूर श्रेणी न बन पाई थी परन्तु बम्बई, अहमदाबाद आदि में, जहाँ-जहाँ मज़दूर थे, उन्होंने अपनी अवस्था में सुधार की माँग पेश की और उसके लिये हड़ताल का आश्रय लेना चाहा। मज़-दूरों का यह काम महात्मा गाधी की राय में अनुचित ठहरा। महात्मा गाधी ने मज़दूरों को समझाया, कि अपने सुधार के लिये उनका मालिकों पर दबाव डालना हिंसा और अन्याय है। उन्हे मालिकों को 'पिता स्थान' समझकर अपना धर्म पालन करना चाहिए। रौलट बिल का विरोध करने के लिये मज़दूरों को हड़ताल करने का उपदेश दिया गया था। जलियानवाला बाग़ की स्मृति में भी उनका हड़ताल करना आध्यात्मिक कार्य था परन्तु अपनी अवस्था मे सुधार करने के लिये मज़दूरों का हड़ताल करना हिंसा और अन्याय हो गया। महात्मा गाधी तुरन्त समझ गये, यदि किसान और मज़दूर अपनी अवस्था मे सुधार करने के लिये अधिकार प्राप्त करना चाहेंगे तो इससे ठाकुर श्रेणी की ठकुराई ख़तरे में पड़ जायगी। गांधीवाद चाहता है, 'राम-राज्य' शूद्रों का राज्य नही। इसलिये १९२१ मे ही म० गाधी ने यंग इंडिया के १६ फरवरी के अंक मे मज़दूरों के राजनैतिक उद्देश्य से हड़ताल करने का विरोधकर कहा, "There are not wanting labour leaders who consider strikes may be engineered for political purposes. In my opinion, it will be most serious mistake to make use of labour for such a purpose"—अनेक मज़दूर नेता समझते हैं कि राजनैतिक उद्देश्य से मज़दूरों की हड़तालें उपयोगी हो सकती है, परन्तु मेरी राय में इस कार्य के लिये मज़दूरों की हड़तालो का उपयोग भारी भूल होगी।

मज़दूरों के राजनैतिक उद्देश्य से संगठित होने के सम्बन्ध में

महात्मा गाधी की नीति आरम्भ से लगातार इसी ढर्रे पर चली आ रही है। मज़दूरों के लिये उनका उपदेश है कि—उनकी सच्ची भलाई धर्म का पालन करने मे है। उन्हे ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए, इसके लिये सत्य और अहिंसा का पालन आवश्यक है। इसी का दूसरा नाम प्रेम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ जीवन है, जहाँ घृणा है वहाँ नाश है*। अर्थात् मिल मालिकों और पूँजीपतियों से प्रेम करके ही मज़दूर अपनी अवस्था सुधार सकते हैं, अधिकार माँगकर नहीं।

गाधीवाद की राजनीति का जन्म दक्षिण अफ्रीका मे हुआ। दक्षिण अफ्रीका मे रहनेवाले भारतीयो पर होनेवाले ज़ुल्मों के विरोध मे सत्याग्रह आरम्भ किया गया। दक्षिण अफ्रीका के भारतीय सब एक से नही थे, न उनकी शिकायते ही एक सी थीं। भारत मे जो आन्दोलन इस विषय मे हुआ, वह मुख्यतः कुलियों पर होनेवाले अत्याचारो के सम्बन्ध मे था। मियादी शर्त पर मज़दूर भर्ती करने की प्रथा, जिसके लिये Indentured labour शब्द का व्यवहार होता है, इतनी अत्याचार पूर्ण थी कि उसके विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन खडा हो गया। भारत सरकार को भी उसके विरुद्ध कार्रवाई करनी पड़ी परन्तु दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह महात्मा गाधी ने इन मज़दूरों की अवस्था पर तरस खाकर आरम्भ नहीं किया, जिन्हे वे स्वयम् भी मनुष्यता की अवस्था से गिरा हुआ समझते थे। आन्दोलन आरम्भ किया गया, अफ्रीका मे बसनेवाले भारतीय व्यापारियों का दुख-दर्द दूर करने के लिये।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीय कुलियो की हालत पर तो संसार रोता था, वहाँ के व्यापारियों की मुसीबत दिखाई दी महात्मा गाधी को। व्यापारियों के सम्बन्ध मे पास किये गये कानूनो के बारे मे अपनी पुस्तक 'Satyagraha in South Africa' मे वे लिखते हैं—

* यंग इण्डिया, ६ अक्टूबर, १९२०

"However even the laws to which they (i. e. indentured labourers) are subject are mild in comparison to the ordinance outlined above (i. e. for Traders) and the penalties they impose are a mere fleabite when compared with penalties laid down in the ordinance (Page 66) अर्थात् मज़दूरो पर होनेवाले अत्याचार व्यापारियो के लिये बनाये गये क़ानूनों के मुक़ाबिले मे कुछ भी न थे। व्यापारियों पर होनेवाले ज़ुल्म के मुक़ाबिले मे कुलियों पर होनेवाला अत्याचार केवल मक्खी काट जाने जैसा था।" यह वही कुली थे, जिनके बारे में महात्मा गाधी लिखते हैं कि उनकी अवस्था मनुष्यत्व से गिरी हुई थी। कुलियो के मनुष्यत्व का नाश होने से भी अधिक अत्याचार महात्मा गाधी को दिखाई दिया व्यापारियों की हालत पर, क्योंकि इन व्यापारियों की सम्पत्ति छीनी जा रही थी। इस विषय को स्पष्ट करने के लिये महात्मा गांधी लिखते हैं—"इन क़ानूनों से लाखो ही रुपये का कारोबार फैलाये हुए भारतीय व्यापारियों को भारत भेज दिया जा सकता था और उनका सब कारोबार बात की बात में मिट्टी में मिल जाता.......।"

दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह चला व्यापारियों को हानि पहुँचानेवाले क़ानूनों को रद्द कराने के लिये। आन्दोलन की ख़ूबी यह थी कि प्रचार किया गया कुलियो की दर्दनाक हालत का और सत्याग्रह किया गया व्यापारियों को नुकसान पहुँचानेवाले कानूनों के ख़िलाफ़, मज़दूरो की सत्याग्रही सेना बना कर। व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिये मज़दूरों का उपयोग कामयाबी से कर सकने की अपनी नीति के बारे में महात्मा गाधी कहते हैं, "या तो दक्षिण अफ़्रीका के व्यापारियो को यह ख़याल ही नही आया कि कुलियों की सहायता आन्दोलन चलाने में ली जा सकती है, या उन्हे भय था कि कुलियों को आन्दोलन

में शामिल करने का परिणाम उनके हक़ में उलटा न हो जाय। म० गाधी ने इसका उपाय ढूँढ़ निकाला। उन्होंने मज़दूरो को समझाया कि दक्षिण अफ्रीका में किसी भी भारतीय का अपमान भारतीय-राष्ट्र का अपमान है। भारत की इज़्ज़त हमारे हाथों है (Indias honour is in our keeping) इसलिये भारतीय व्यापारियो पर होनेवाले अन्याय के लिये तमाम भारतीयों को लड़ना चाहिए। सत्याग्रह शुरू हो गया। सत्याग्रह युद्ध मे महात्मा गाधी ने स्त्रियों को आगे किया। स्त्रियों के गिरफ़्तार होने से जोश मे आ कुली शान्तिमय युद्ध मे सब कुछ क़ुर्बान करने को तैयार हो गये। कुलियों को यह परवाह तो थी नही कि उन्हे कोई नुक़सान हो सकता है, उनका लाखों का कारोबार मिट्टी मे मिल सकता है, वे सब कुछ करने के लिये तैयार हो गये। जो कुली अपने शरीर, प्राणो और मनुष्यत्व की रक्षा करने मे असमर्थ थे, वे लखपतियों और व्यापारियो के सम्पत्ति कमाने के अधिकार की रक्षा करने के लिये आगे बढ़े। कहा जाता है, सत्याग्रह सफल हुआ। समझौता यह हुआ कि भारतीयों से सम्बन्ध रखनेवाले क़ानूनों का उपयोग "With due regard to vested rights"—उनकी सम्पत्ति की रक्षा का उचित ध्यान रखकर किया जायगा। कुली जैसे थे वैसे ही रह गये। गाधी—स्मट्स समझौते मे जो बाते अफ्रीकन सरकार ने मानी, वे सब शनैः शनैः भुला दी गईं। यह है सत्याग्रह की अपार शक्ति, जो महात्मा गाधी के विचार मे कभी असफल हो ही नहीं सकती। ×

गाधीवाद के अनुसार मज़दूरो के लिये यही धर्म है कि वे अपनी शक्ति से सम्पत्ति शाली ठाकुर श्रेणी का मतलब पूरा करनेवाले आन्दो-

× दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का लेख 'दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा का पहला प्रयोग' हंस, मार्च १९४१ में अनेक ज्ञातव्य और प्रामाणिक बातों के लिये उपयोगी होगा।

लन को सफल बनाये। किसान मज़दूरों का स्वयम् चेतन होकर, किसी बात को अपना अधिकार समझकर माँग करना अनुचित है। इससे हिंसा की भावना पैदा होती है इसीलिये जब कभी मज़दूरो ने अपनी माँगों पर सत्याग्रह किया, महात्मा गांधी का फतवा उनके विरुद्ध ही हुआ।

मज़दूरों के प्रति गाधीवाद का जो रुख है, किसानों के प्रति उससे भिन्न नहीं। सन् १६२१ में जब किसानों ने अपनी दुरावस्था सुधारने के लिये लगान बन्दी की आवाज़ उठाई, महात्मा गाधी ने ज़मींदार श्रेणी के अधिकारों पर आनेवाली आँच को तुरंत भाँप लिया। १६ जनवरी के यङ्गइण्डिया में उन्होने अपना फतवा दिया— "I know that withholding of taxes is one of the quickest methods of overwhelming a Government" मै यह जानता हूँ, कर अदा न करना सरकार को बहुत जल्दी परास्त कर देने का एक सीधा उपाय है। यह जानते हुए भी एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लेने की महान् प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये इस हथियार का उपयोग नहीं किया गया। वजह समझ पाना कुछ कठिन नहीं। किसानों की माँग थी कि बड़ी मेहनत से वह जो कुछ पैदा करता है, वह उससे छीन न लिया जाय। स्वयं उसका पेट भरने के लिये भी उसकी मेहनत का पर्याप्त भाग उसके पास रहना चाहिये। इस माँग के लिये किसान लड़ना चाहते थे लगानबन्दी द्वारा। किसान लगानबन्दी द्वारा निष्काम भाव से केवल सरकार को ही परेशान नहीं करना चाहते थे, इसमें उनके अपने पेट का भी सवाल था। यदि किसान लगान न अदा करने की अपनी शक्ति को पहचान जाते, तो सरकार का तो जो कुछ बनता विगड़ता, परन्तु सरकार के पुरोहित ज़मींदार का क्या होता? उन ज़मींदारो पर क्या बीतती जो सरकारी कर से दुगना, तिगना और चौगुना तक अपने पेट मे रख लेते हैं? *

* 'The Problem of India' by K. S. Shelvankar' Page 89.

किसानो के मन में पैदा हुई हिंसा को भाँपकर महात्मा गाधी ने तुरंत यङ्गइण्डिया द्वारा उपदेश दिया—"It is not contemplated that at any stage of Non-Co-operation we would seek to deprive the zamindars of their rent" हमारा यह इरादा बिलकुल नही कि असहयोग आन्दोलन में किसी भी अवसर पर ज़मींदार का लगान बन्द कर दिया जाय।"* ग़लतफहमी न रहने देने के लिये महात्मा गाधी ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया—"The Kisans must be advised scrupulously to abide by the terms of their agreement with the zamindars, whether such is writen or inferred from custom. "किसानो को समझा देना चाहिये कि ज़मींदारों से किये गये अपने समझौते का उन्हे धर्म पूर्वक पालन करना चाहिये, चाहे यह समझौता क़लमबन्द हो या रिवाज़ के अनुसार चला आया हो!" ज़मींदारो से किसानो के समझौते का अर्थ है, किसान ज़मीदारो की प्रजा बनकर रहे, उन्हे लगान अदा करते जायँ। किसानो की अपनी अवस्था चाहे जैसी भी रहे।

किसानो को ज़मीदारो की अत्याचार पूर्ण व्यवस्था के आगे सिर झुकाये चले जाने का उपदेश देने का साहस कोई दूसरा आदमी नही कर सकता, महात्मा गाधी कर सकते हैं, क्योकि वे अपने आपको किसानो का रक्षक और प्रतिनिधि कहते हैं, उनकी अवस्था पर आँसू बहाते हैं, उन्ही की तरह जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु इन सब बातो से किसानो को क्या लाभ होता है? महात्मा गाधी को किसानो का रक्षक कहलाने का अधिकार इसलिये प्राप्त हुआ कि उन्होने चम्पारन मे किसानो की अवस्था सुधारी थी। चम्पारन मे क्या हुआ? यह श्री पट्टाभि सीतारमैया ने बड़े करुणा पूर्ण शब्दो

* यङ्गइण्डिया १८ मई १९२१।

में काग्रेस के इतिहास में लिख दिया है। सम्पूर्ण वृत्तान्त का अभिप्राय यह है कि निलहे गोरे ज़मीदार किसानों पर बहुत ज़ुल्म ढाते थे। महात्मा गाधी ने उन ज़ुल्मों की लिस्ट बनाकर आन्दोलन चलाया। निलहे गोरे घबरा गये और अपनी-अपनी जायदादें बेचकर भाग खड़े हुए। सवाल उठता है कि निलहे गोरों द्वारा किये जानेवाले ज़ुल्मों में कौन ऐसा ज़ुल्म है, जिसे भारतीय ज़मींदार, जिन्हें महात्मा गाधी किसानों का 'पिता-स्थान' और 'ट्रस्टी' बताते हैं, नहीं करते !* लेकिन यदि किसानों के आन्दोलन से भारतीय ठाकुर श्रेणी को चोट पहुँचने का अवसर आये, तो अहिंसा की रक्षा के लिये आन्दोलन भले ही स्थगित करना पड़े, भले ही एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्ति की प्रतिज्ञा टूट जाय, पर इन्हें ज़रब नहीं आनी चाहिये।

गांधीवादी नीति के अनुसार स्वराज्य का उद्देश्य भारत से विदेशी शासन को हटाना है परन्तु यदि विदेशी सरकार को हटाने के उपाय की लपेट में भारत की पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणियाँ आने लगें, तो वह उपाय हिंसात्मक यानि नीति विरुद्ध है। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी का प्रभुत्व नष्ट होना भयंकर हिंसा है, इतनी भयंकर कि उनके मुकाबिले में विदेशी सरकार के शासन से होनेवाली हिंसा भी बर्दाश्त की जा सकती है। तभी तो गाधीवाद कहता है कि भारत को ऐसे स्वराज्य की आवश्यकता नहीं जिसे प्राप्त करने में हिंसा हो।

सन् १९२० का सत्याग्रह आन्दोलन दो कारणों से समाप्त हुआ। एक कारण था, महात्मा गाधी के विचारानुसार जनता में हिंसा की भावना आ गई। जनता में हिंसा की भावना का प्रमाण मिला, भज़-

---

* श्री पट्टाभि सीतारमैया ने 'काग्रेस का इतिहास' पृष्ठ २१२ पर चम्पारन में निलहे गोरों द्वारा किये जानेवाले जिन अत्याचारों का वर्णन किया है, भारतीय ज़मींदारों की प्रजा उन्हें नित्य ही अनुभव करती है।

दूरों-किसानो के जोश में आकर अपनी माँगे पेश कर देने से और अहिंसा का अनुशासन न मान कर चौरी-चौरा जैसे भयंकर काण्ड कर देने से। दूसरा कारण था, ऊँची श्रेणी के लोगो मे मौण्टेगू सुधारों में मिली कौन्सिलों मे जाने की इच्छा। १६३५ के सुधारों की भाँति आरम्भ मे मौण्टेगू सुधारों को भी ठुकराया गया। कौन्सिलों में नाई, धोबी, चमार भेजकर मज़ाक उड़ाया गया। परन्तु दूसरे चुनाव का अवसर आते ही काग्रेस के बड़े-बड़े लीडर, स्वनामधन्य लाला लाजपतराय, देशबन्धू दास और मोतीलाल नेहरू कौन्सिलों मे जाने के लिये काग्रेस को अपनी नीति परिवर्तन करने के लिये मजबूर करने लगे। महात्मा गाधी को दोनों ही बातों से निराशा हुई। अहिंसा की रक्षा के लिये उन्होने आन्दोलन वन्द कर दिया और कौन्सिलों मे जाने का भी उन्होंने विरोध किया। उन्होंने कहा कि असहयोग और कौन्सिल प्रवेश का मेल नहीं हो सकता।

महात्मा गाधी के विरोध करते रहने से क्या होता था ? ठाकुर श्रेणी के लिये अवसर था कि कौन्सिल में जाकर सरकार के साथ मिल क़ानून बनवाकर जितना लाभ उठाया जा सकता था, उठाया जाय। महात्मा गाधी के विरोध से यह श्रेणी अपने स्वार्थों को छोड नहीं सकती थी। गाधीवाद का जादू चलता है केवल अशिक्षित और साधनहीन श्रेणी पर, क्योंकि यह अपने हित को पहचान नहीं सकती। निराश हो महात्मा गाधी नोचेंजर (अपरिवर्तनवादी) दल को ले रूठ कर अलग हो गये*। हिंसा के दोषी होने के कारण आम जनता से महात्मा गाधी पहले ही रूठ चुके थे।

कौन्सिल प्रवेश के कारण होनेवाली महात्मा गाधी की नाराज़ी कुछ दिन में दूर हो गई और वे कौन्सिलों के कार्य मे सलाह मशविरा भी देने लगे। कौन्सिलों में जा काग्रेसी नेता आपस में ही लडने लगे

---

* मजा यह है कि उस समय श्री राज गोपालाचार्य भी कौन्सिल विरोधी थे।

और उनके कई दल बन गये ; स्वराजिस्ट, नेशनल-स्वराजिस्ट और जाने क्या-क्या ! कांग्रेसी नेताओं के अलग-अलग दलों में बँट जाने का कारण भी उनके स्वार्थ थे। किसी ने साम्प्रदायिक स्वार्थ को महत्व दिया, कुछ ने वैयक्तिक रूप से महत्वकाक्षा पूर्ण करने की ओर और कुछ ने राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी श्रेणी के हितों की फ़िक्र की।

सन् १९२० का काग्रेस का यह आन्दोलन मध्यम श्रेणी से उठकर स्वाभाविक रूप से आम जनता में जा रहा था। इसका स्वाभाविक क्रम होना चाहिये था, आम जनता का स्वराज्य के मोर्चे पर आकर शासन के अधिकार को पाना परन्तु इसमें हिंसा का भय देख गाधीवादी राजनीति ने उसे रोक दिया। परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन सम्पत्तिशाली और मध्यम श्रेणी के मनभाये खेल और कौन्सिलो की पैंतराबाजी मे बिखर गया। एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने की महान प्रतिज्ञा का अन्त हुआ, जाकर कौन्सिलों के मरघट में।

(२)

सन् १९२९ में ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन विधान में सुधार की तजवीज़ों पर विचार करने के लिये साइमन कमीशन भारत भेजा। भारत के दूसरे सभी राजनैतिक दलों ने इस कमीशन का विरोध किया, काग्रेस ने किया असहयोग। काग्रेस को एतराज़ था कि कमीशन मे भारतीयो को नहीं रखा गया। अर्थात् भारतवासियो को शासन विधान बनाने में सहयोग का अवसर क्यो नही दिया गया। कमीशन के बायकाट ने सार्वजनिक आन्दोलन का रूप ले लिया। सरकार ने दमन आरम्भ किया, उससे देश में जागृति और विद्रोह की भावना उठ खड़ी हुई। राजनैतिक प्रवाह उमड़ता देख काग्रेस का नियंत्रण करनेवाला दल महात्मा गाधी को नेता बनाकर देश का राजनैतिक संचालन करने के लिये फिर आगे बढा। सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन का आरम्भ हुआ लाहौर काग्रेस के अधिवेशन से।

सन् १६२० में स्वराज्य के लिये आन्दोलन आरम्भ करते समय म० गांधी सबसे अधिक उग्र राजनैतिक विचार लेकर आये थे। १६२० से १६३० तक के समय में देश की राजनैतिक स्थिति का अनुभव प्राप्त कर काफी संख्या ऐसे लोगो की पैदा हो गई जो गाधीवादी नीति के राजनैतिक कार्य-क्रम में शिथिलता अनुभव करने लगे। इन लोगों ने कौन्सिल प्रवेश के समय १६२४ में भी विरोध किया था। यह लोग स्वराज्य के आन्दोलन को देश की आम जनता तक पहुँचाने के लिये उसमे मज़दूरों तथा किसानों की माँगे शामिल करना चाहते थे। सन् १६२० के आन्दोलन के बाद कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाली श्रेणी ने इन लोगों की परवाह न की परन्तु सन्१६३० मे जब आन्दोलन के लिये आम जनता की शक्ति की ज़रूरत हुई, इन लोगो को समेटने का आयोजन किया गया।

भारत की जनता की राजनैतिक भावना को समझने के लिये उसे कई भागो में बाँटा जा सकता है। राजाओं, महाराजाओं, नवाबों की चर्चा करने की ज़रूरत नहीं। वे आम जनता के अंग नहीं। उनका अस्तित्व ब्रिटिश सरकार की मंज़ूरी और इच्छा से ही है। भारत की राष्ट्रीयता या स्वराज्य प्राप्ति से उन्हे विरोध के सिवा मतलब नहीं। इसके बाद नम्बर आता है बड़े-बड़े पूँजीपतियों का, जिनकी बड़ी-बड़ी मिले चलती हैं, या जो विदेशी व्यापारियों के मुक़ाबिले में इस देश मे कारोबार चलाते हैं और ज़मींदारो का। इन लोगों का लाभ इसी बात मे है कि शासन विधान के क़ानूनों मे परिवर्तन करने का इन्हें अवसर रहे। ब्रिटिश सरकार द्वारा विदेशी कारोबारियों को इस प्रकार की सुविधाये मुहय्या की जाती हैं जिनसे विदेशी पूँजीपति व्यापार और कारोबार द्वारा इस देश का गहरा शोषण कर सकते हैं। ऐसी सुविधाये देशी पूँजीपतियों को नही है। विदेशी पूँजीपतियों के मुक़ाबिले मे वे कम लाभ उठा पाते हैं। देशी ज़मीदारों को भी अपनी रैयत के शोषण से समेटे धन का एक भाग सरकार के हाथ

सौंपना पड़ता है। अपने शोषण के अधिकार को मन चाहे ढंग से बढ़ाने के लिये इन लोगों को स्वराज्य-शासन के अधिकार अपने हाथ में करने की ज़रूरत है। इस पूँजीपति और ज़मीदार श्रेणी के साथ ही इस श्रेणी के आधीन रहकर मज़दूरो तथा किसानों का शोषण करने में उन्हें सहायता देकर अपना निर्वाह करनेवाली मध्यम श्रेणी है। दूसरी श्रेणी है शोषित वर्ग की, जिसमें मज़दूर, किसान, छोटे-छोटे चलतू रोज़गार करनेवाले और साधारण निम्न श्रेणी के नौकरी पेशा लोग हैं। इनकी मेहनत की पैदावार पर ही पूँजीपति ज़मींदार और उनकी सहायक श्रेणी फूलती फलती है।

कांग्रेस का नेतृत्व सदा से पूँजीपति श्रेणी के इशारों पर चलनेवाली मध्यम श्रेणी के ऊँचे दर्जे के लोगों के हाथ में रहा है। कांग्रेस की साधारण जनता मे निम्न मध्यम श्रेणी और शोषित श्रेणी के कुछ बेहतर अवस्था में रहनेवाले शिक्षित समुदाय के लोग हैं। प्रचार की सहायता से राष्ट्रीयता के नाम पर कांग्रेस आम जनता या शोषित वर्ग का समर्थन और सहायता प्राप्त कर विदेशी सरकार पर ज़ोर तो अवश्य डालती आई है परन्तु कांग्रेस की नीति निश्चित करने मे इन लोगो को कभी अधिकार नहीं रहा। कांग्रेस को खुल्लमखुल्ला पूँजीपति श्रेणी के हित साधन का हथियार बनते देख समय-समय पर यह श्रेणी असंतोष भी प्रकट करती रही है।

पूँजीपति और मालिक श्रेणी के हितों पर आँच आती देख १६२० में स्वराज्य के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन स्थगित हो गया। आन्दोलन के लिये किये त्याग का कुछ फल निकलता न देख देश की निम्न मध्यम श्रेणी तथा शोषित वर्ग के शिक्षित लोगों में गांधीवादी कांग्रेसी की नीति से असंतोष फैलने लगा। उस समय महात्मा गांधी को देश की ग़रीब जनता का प्रतिनिधि बताकर कांग्रेस के मालिकों ने उनके फर्मानों और फतवों से इस श्रेणी को चुप करा दिया

गाधीवाद का उपदेश और परिणाम परस्पर भिन्न-भिन्न है। यो तो गाधीवाद दरिद्रनारायण की पूजा करता है और धन दौलत इकट्ठा करना पाप बताता है परन्तु गाधीवाद की सहायता धनी और दौलतमन्द श्रेणी ही करती है। इस श्रेणी के प्रतिनिधि महात्मा गाधी को काग्रेस का डिक्टेटर बनाकर स्वयं उनके चेले बन जाते हैं परन्तु ऐसा भी समय आता है कि वे गाधीवाद के सिद्धान्तो को आम जनता के लिये अव्यवहारिक बताकर सत्य और अहिंसा के प्रयोगो को व्यक्तिगत रूप से करने की छुट्टी महात्मा गाधी को दे देते हैं। जिसका अर्थ होता है, महात्मा गाधी को काग्रेस से अलग कर देना। जब गाधीवाद के सत्य अहिंसा के जुये में जनता को फँसाकर यह श्रेणी अपने स्वार्थों की गाडी खिंचवा सकती है, तब गाधीवाद में इतनी गहरी श्रद्धा प्रकट की जाती है कि सत्य और अहिंसा के नाम पर आम जनता के हितो या राष्ट्र के हितो को भी कुर्बान कर देने मे इसे सकोच नहीं होता है। गांधीवाद से स्वार्थ तो इस श्रेणी के पूर्ण होते हैं, परन्तु डोंडी यह पीटी जाती है कि गांधीवाद दरिद्र नारायण की पूजा करता है, वह सात पैसा रोज़ कमानेवाली और सात लाख गाँवो में बसनेवाली अशिक्षित जनता का रक्षक है। जब किसान, मज़दूर श्रेणी के लोग अपनी अवस्था से असंतोष अनुभव करने लगते हैं, तो उन्हे समझाया जाता है कि उनके कल्याण और मुक्ति का उपाय श्रेणी के रूप में सघर्ष द्वारा अधिकार प्राप्त करने से नहीं, बल्कि गाधीवाद की सीख मानकर त्याग और संतोष मे हैं।

शोषित श्रेणी के शिक्षित लोग और मध्यम श्रेणी के वे लोग जो विश्वास की अपेक्षा तर्क का आश्रय लेते हैं, जो व्यक्तिगत तथा श्रेणी स्वार्थों की अपेक्षा समाज के हित को महत्व देते हैं, इस अवस्था मे असंतोष की आवाज़ उठाये बिना नहीं रह सकते। आन्दोलन के क्षेत्र मे ऐसे लोगों की शक्ति का बहुत महत्व होता है। धन दौलत के साधन

इन लोगों के पास न होने पर भी अपने कार्यक्रम को जनता के सामने रख वे उसका सहयोग और शक्ति पा सकते हैं। जहाँ तक सम्भव होता है, पूँजीपति श्रेणी ऐसे लोगों को राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी ओर घसीटे रहती है। सन् १६२६-३० में साइमन कमीशन का बायकाट करने और आन्दोलन चलाकर शासन के अधिकारों को हथियाने के लिये सरकार पर ज़ोर डालना ज़रूरी था। उसके लिये उग्र लोगों को भी काग्रेस के मोर्चे पर लाने की ज़रूरत हुई। काग्रेस में इस विचार के लोगो के प्रतिनिधि पं० जवाहरलाल नेहरू को समझकर उन्हे लाहौर काग्रेस का प्रधान नियत किया गया। पं० नेहरू को प्रधान तो नियत किया गया, परन्तु महात्मा गांधी की इच्छा से। आन्दोलन को चलाने का एक मात्र अधिकार भी महात्मा गाधी को ही दिया गया।

लाहौर काग्रेस में आन्दोलन का डिक्टेटर म० गाधी का चुना जाना एक विचित्र समस्या थी। आम जनता या तो महात्मा गाधी की सत्य अहिंसा की नीति को समझ न सकी या यह नीति उन्हे स्वीकार न थी। लाहौर काग्रेस में म० गाधी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि काग्रेस के कार्य-क्रम मे शान्तिमय और वैध उपायों (Peaceful and Legitimate means) के स्थान पर सत्य और अहिंसा के उपाय (truthful and non-violent means) शब्द रक्खे जाय। महात्मा गाधी का अभि-प्राय था, काग्रेस अहिंसा को नीति के रूप में न मानकर उद्देश्य समझे। बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार न हो सका। सन् १६३४ में बम्बई के काग्रेस अधिवेशन में भी महात्मा गाधी ने फिर इस बात पर ज़ोर दिया कि काग्रेस अपने कार्य क्रम में वैध तथा शान्ति पूर्ण उपाय के स्थान पर सत्य और अहिंसा के उपाय शामिल करे परन्तु यह प्रस्ताव दूसरी दफे फिर गिर गया। यद्यपि काग्रेस ने बहुमत से महात्मा गाधी की नीति के मूल तत्व को अस्वीकार कर दिया परन्तु फिर भी वे काग्रेस के सर्वे-सर्वा हो गये क्योंकि काग्रेस उनके विना चल नहीं सकती।

कांग्रेस के बहुमत का विश्वास गांधीवाद में न होते हुए भी कांग्रेस महात्मा गाधी या गाधीवाद को क्यो नहीं छोड़ सकती ? इस समस्या का उत्तर कांग्रेस की नेताशाही संक्षेप में दे चुकी है। वे कई दफ़े अपने व्यवहार और शब्दों से प्रकट कर चुके हैं कि महात्मा गाधी ही कांग्रेस हैं। इस बात को स्वीकार करने में कांग्रेस के सर्व साधारण मेम्बर अभिमान अनुभव नही करते। यह बात कांग्रेस के वे ही नेता गर्व पूर्वक कह सकते हैं, जिन्हे इस बात का विश्वास है कि महात्मा गाधी और गाधीवाद उनके हाथ की कठपुतली है।

कांग्रेस को अपनी नीति और कार्यक्रम पर विश्वास न दिला सकने पर भी गाधीवाद कांग्रेस पर शासन कर सकता है, क्योंकि कांग्रेस को क़ायम रखने और चलाने के लिये जिन साधनो की ज़रूरत है, उन साधनों के मालिकों का उद्देश्य गाधीवाद से पूरा होता है। कांग्रेस के पचास लाख मेम्बर मिलकर जितने साधन मुहय्या नहीं कर सकते उतने साधन कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाले पाँच पूँजीपति जमा कर सकते हैं। कांग्रेस का काम और विधान जिस पूँजीपति ढग से चलता है, उसमे बजट ही प्रधान शक्ति और केन्द्र है। कांग्रेस में उग्रनीति के समर्थक, कम्युनिस्ट, कांग्रेस-समाजवादी आदि लोग तर्क की दृष्टि से गाधीवाद से असतुष्ट रहने पर भी यह बात स्वीकार करने के लिये मजबूर हैं कि महात्मा गांधी के बिना कांग्रेस नहीं चल सकती। महात्मा गाधी के अलग हटते ही कांग्रेस के पैरों तले से साधनो की ज़मीन खिसक जायगी। वास्तव में कांग्रेस और कांग्रेस-जन महात्मा गाधी के ग़ुलाम नही। वे उस श्रेणी के ग़ुलाम हैं, जो सब साधनों की मालिक हैं।

सन् १६२० के आन्दोलन के बाद ठाकुर श्रेणियों ने गाधीवादी सत्याग्रह और असहयोग को तिलाजली दे दी थी। मौक़ा आने पर उन्होने उसे फिर से अपना लिया। सन् १६३० मे नये शासन विधान की नींव रखी जाने के समय ब्रिटिश सरकार को भारत की पूँजीपति

श्रेणी का बल और प्रभाव राष्ट्रीय माँग के रूप में दिखाना ज़रूरी था। स्वराज्य के लिये सत्याग्रह युद्ध फिर चला। इस दफे भी पहले का सा ही हाल था। स्वराज्य की कोई निश्चित रूप रेखा तैयार किये बिना स्वराज्य माँगने की पुकार उठाई गई और भारत की स्वतंत्रता का सार नमक क़ानून तोडने में समझकर कार्य-क्रम चला। सन् १९२० के आन्दोलन और सन् १९३० के आन्दोलन मे एक अन्तर था। पहले आन्दोलन में राष्ट्रीयता पर ज़ोर था। दूसरे आन्दोलन में गाधीयता अधिक भरी जाने लगी।

नमक क़ानून तोड़ना सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन का मुख्य शस्त्र था। राजनैतिक अपराध की दृष्टि से नमक क़ानून तोडने का परिणाम वही था जो किसी भी क़ानून को तोडने का हो सकता है परन्तु क़ानून तोड़नेवालों के लाभ की दृष्टि से यह परिणाम कुछ भी न था। नमक क़ानून के कष्टो के कारण भारत की प्रजा त्राहि-त्राहि नहीं पुकार रही थी। भारत की प्रजा के पेट पर पत्थर तो रखा जा रहा था भारी लगान, कम मज़दूरी और बेरोज़गारी के कारण परन्तु तोडा गया नमक क़ानून! कहा जायगा कि यह एक राजनैतिक व्यायाम था जो आगे आनेवाले भारी संघर्ष की तैयारी के लिये किया गया लेकिन वह भारी राजनैतिक संघर्ष तो कभी सामने आया नही। जिस प्रकार राजनैतिक संघर्ष आरम्भ किया गया था, उसमे संघर्ष के आगे बढ़ने की गुंजाइश भी न थी। साधारण बुद्धि का व्यक्ति यही समझेगा कि ग़ैर क़ानूनी नमक की पुड़िया तैयार करने में जो कुरबानी की गई, उसे किसी ठोस प्रश्न पर किया जाता तो देश की राजनैतिक जागृति और प्रगति उससे कहीं आगे तक होती जहाँ कि वह आज है। लेकिन सत्याग्रह के लिये किसी भी ऐसी माँग को आगे रखने से, जिससे शोषितों को लाभ होता, भारत की मालिक या ठाकुर श्रेणी के स्वार्थ को आँच आ सकती थी।

स्वराज्य के लिये सत्याग्रह आरम्भ करने पर सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों को बालाये ताक़ रखकर नमक क़ानून तोड़ने की फूलछड़ी से सरकार से लड़ाई लड़ी गई। प्रयोजन मौजूदा व्यवस्था को पलटकर नई व्यवस्था क़ायम करना नहीं, सरकार को धौंस देना था। यह दूसरी बात है कि सरकार ने इस मज़ाक की शाइस्तगी समझने की कोशिश न कर अपना अधिकार और आतंक क़ायम रखने के लिये इस आन्दोलन को लाठी, घोड़ों के नाल और गोलियों की बौछार से दबा दिया। जो भी हो, महात्मा गाधी और गाधीवाद की राजनैतिक बुद्धि को इतना बोदा नहीं समझा जा सकता कि शासन विधान में क्रान्ति करने के लिये नमक की पुड़िया को ही वे सब कुछ समझ बैठते। नमक सत्याग्रह का रहस्य इस बात में था कि सत्याग्रह के लिये कोई ऐसा हथियार चुना जाय जो देश की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में विघ्न डाले विना विदेशी सरकार को भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति समझा दे। सरकार भारत की राष्ट्रीय भावना से डरकर देश की उस श्रेणी से समझौता करने के लिये घुटने टिका दे जो इस राष्ट्रीय आन्दोलन की आँधी को खड़ाकर सकती है।

पूँजीपति श्रेणी या इस श्रेणी का कारिन्दा गाधीवाद राष्ट्रीय आन्दोलन तो चाहता था, परन्तु उसे 'हिंसा' से भय था। हिंसा से भय का अर्थ यह नहीं था कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन करनेवालों को चोट न आये, इस बात की परवाह न थी। आन्दोलन आरम्भ करते समय ही महात्मा गाधी ने कह दिया था कि सरकार की जेलों के दरवाज़ों पर वे सत्याग्रहियों की हड्डियों के पहाड़ लगा देंगे। हिंसा का अर्थ यह भी नही था कि अंग्रेज़ों के हाथ से इस देश का शासन और शोषण का अधिकार छीनने से उनका दिल न दुखे। हिंसा का अभिप्राय था कि राष्ट्रीय आन्दोलन इस प्रकार का रूप धारण न कर ले कि देश

की सम्पत्ति की मालिक ठाकुर श्रेणियों की स्थिति और उनके अधिकार ख़तरे में पड जायें।

जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह का उद्देश्य लाहौर कांग्रेस में भारत की जनता के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति बताया गया। स्वतंत्रता का सबसे पहला अर्थ है, जीवित रहने का अधिकार ! यदि जनता की स्वतंत्रता का अर्थ उनके लिये जीवन निर्वाह के साधनों को उपयोग में लाने की स्वतंत्रता और अपने परिश्रम से उत्पन्न पैदावार को पूर्ण रूप से व्यवहार में लाने की स्वतंत्रता समझा जाय, तो इसका सीधा उपाय, शोषण की व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन है। शोषण की व्यवस्था दूर होने का मतलब है, विदेशी शासन की नींव उखड जाना। इसमें सन्देह नहीं कि जनता के हाथ मे आत्म-निर्णय का अधिकार आ जाने से विदेशी शासन समाप्त हो जायगा परन्तु इसके साथ ही भारत की ज़मीदार और पूँजीपति श्रेणी भी, जो विदेशी सरकार की पुरोहित बनकर शोषण कर रही है और अपने आपको ब्रिटिश शासन और शोषण का वारिस समझती है, मिट जायगी। इसीलिये स्वराज्य का अर्थ यह नहीं समझा गया कि जनता को जीवन निर्वाह के साधन पाने की स्वतंत्रता हो, भूमि पर जोतनेवाले का और कारख़ाने पर मेहनत करने वाले का अधिकार हो। आन्दोलन में किसी ऐसी बात के लिये स्थान भी न हो सकता था जिससे जनता में अपनी कठिनाइयों को दूर करने का भाव पैदा हो। आन्दोलन का उद्देश्य रखा गया भारत के लिये स्वराज्य परन्तु भारत कौन है, एक फीसदी ठाकुर लोग या निन्नानवे फ़ीसदी शोषित जनता ? इस तरह के राजनैतिक आन्दोलन के लिये नमक क़ानून तोडने का नुसख़ा ही बेहतरीन था, जो भारत की शोषक श्रेणियों के अधिकारों पर चोट पहुँचाये बिना—जिनके अधिकार गाधीवाद के सत्य-अहिंसा और धर्म के अन्तरगत हैं, जो शोषित प्रजा के पिता तथा संरक्षक स्थान हैं—राजनैतिक बवंडर खड़ा कर सके।

इस आन्दोलन के बढ़ने पर १९३१ में महात्मा गाधी की अनुमति के बिना ही जगह-जगह लगान वंदी हुई लेकिन यह लगान वंदी केवल सरकार को ज़द पहुँचाने के लिये हुई। इस भाव से नही कि लगान किसान के परिश्रम का फल है, वह उससे नहीं छीना जाना चाहिए। एक वर्ष के आन्दोलन के वाद जब सरकार से फिर समझौता कर लिया गया, तो किसान की ज़मीन या मज़दूर की अवस्था में सुधार का कोई प्रश्न नही आया। प्रश्न आया केवल यह कि काग्रेस के प्रतिनिधि के तौर पर महात्मा गाधी को गोलमेज़ कानफ्रेस में वुला लिया जाय। देश की प्रतिनिधि है काग्रेस, काग्रेस के प्रतिनिधि हैं महात्मा गाधी परन्तु भारत के व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करने के गम्भीर कार्य को महात्मा गाधी नहीं निभा सकते थे। १९३० की पहली गोलमेज़ कानफ्रेस में व्यापारी सघ ने इसलिये भाग नहीं लिया कि महात्मा गाधी का आशीर्वाद न था, वे उसमें न गये थे। दूसरी गोलमेज़ में महात्मा गांधी के जाने पर व्यापारी संघ ने भी भाग लिया और एक नहीं तीन-तीन प्रतिनिधियों की माँग की। कानफ्रेस में एक्सचेंज के मामले में जब गांधी जी भारतीय व्यापारियों की वात सम्भालने में चूक गये तो उन्हे सेठ बिडला से फटकार खाकर आगे उनसे सलाह लिये विना न वोलने का निश्चय दिलाना पडा †।

लार्ड इरविन से समझौता करने के लिये भी काग्रेस की गाधीवादी नीति ने कोई ठोस शर्त पेश न कर केवल हृदय परिवर्तन की ही माँग पेश की। हृदय परिवर्तन शब्द गाधीवादी नीति में विशेष रूप से व्यवहार में आता है। हृदय परिवर्तन के लिये किसी ठोस प्रमाण या कार्य की आवश्यकता नही रहती। आवश्यकता रहती है केवल इस वात की कि महात्मा गाधी और उनके अनुयायी समझ ले कि विरोधी का हृदय परिवर्तन हो गया है। जिस समय भी गांधीवादी नेता सत्या-

† 'डायरी के कुछ पन्ने' ले० श्री० घनश्यामदास बिड़ला, पृ० ६०

ग्रह संग्राम को स्थगित करना चाहते हैं, गाधीवादी नीति विरोधी के हृदय में परिवर्तन अनुभव करने लगती है। १९३० का सत्याग्रह आरम्भ करते समय महात्मा गाधी ने एलान किया था—"अब तक मुझे दरख्वास्त देने, डेपुटेशन भेजने और मित्रतापूर्ण पत्र व्यवहार में विश्वास था परन्तु यह सब मिट चुका है (Gone to dogs)। मैं समझ गया हूँ कि सरकार इन तरीक़ो से नहीं समझ सकती। राजद्रोह अब मेरा धर्म हो गया है—हमारा यह धार्मिक कर्तव्य हो गया है कि हम इस सरकार के अभिशाप (This Curse of Government) को मिटा दें *।

इस एलान को पढ़ने के बाद जान पड़ता है कि महात्मा गाधी सरकार के हृदय परिवर्तन की आशा छोड़ चुके थे परन्तु गोलमेज़ कान-फ्रेन्स में पहुँचकर उनका विचार फिर बदल गया। इँगलैण्ड में महात्मा गाधी का एलान दूसरा ही था। वहाँ आपने फर्माया—"हमें ब्रिटेन के हृदय मे भारत के लिये प्रेम उत्पन्न करना है। यदि ब्रिटेन की जनता समझती है कि हमें इस कार्य में सौ वर्ष लग जायँगे, तो कांग्रेस सौ वर्ष तक अग्नि परीक्षा मे तपती रहेगी। †

भारत की साधारण जनता को यह बात तर्क संगत नहीं जान पड़ेगी परन्तु महात्मा गाधी के समर्थक तर्क की परवाह करते भी नहीं। उनका दावा है कि महात्मा गाधी आतरिक प्रेरणा (Instinct) के अनुसार चलते हैं। ब्रिटेन को यह विश्वास दिलाने में कि वे ब्रिटेन को भारत से प्रेम कराये बिना न मानेंगे और सौ वर्ष तक इसके लिये तपस्या करने को तैयार हैं महात्मा गाधी का मतलब केवल यही समझा जा सकता है, कि वास्तव मे ही वे सौ वर्ष तक भी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते जिससे ब्रिटेन द्वारा भारत में जारी की गई व्यवस्था में उथल-

---

* 'कांग्रेस का इतिहास' पट्टाभि सीता रमैय्या पृ० ६५१

† 'कांग्रेस का इतिहास' पृष्ठ ८३५।

पुथल हो। ऐसा करना वे उचित भी नहीं समझते। उनके विचार में भारत और ब्रिटेन के हित एक हैं। किसी न किसी दिन ब्रिटेन इस बात को समझेगा ही। कांग्रेस की गांधीवादी नीति की यह प्रेरणा वास्तव में ही उस श्रेणी के स्वार्थों की प्रतिध्वनि है जिनके हितों की रक्षा करना गाधीवाद की दृष्टि में सत्य धर्म और अहिंसा है। *

ब्रिटेन और भारत के हितों में कुछ भेद है, इसीसे दोनों में विरोध दिखाई देता है। ऊपर हम कह आये हैं, भारत का मनुष्य समाज श्रेणियो मे बँटा हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य से भारत का शोषक और शोषित का सम्बन्ध है। यों तो सम्पूर्ण भारत शोषित है परन्तु इस शोषण में भारत की भिन्न-भिन्न श्रेणियो का स्थान अलग-अलग है। किसान, मज़दूर या परिश्रम करनेवाली आमजनता तो भोजन के पदार्थ की भाँति है और पूँजीपति तथा ज़मींदार श्रेणी रसोइये के स्थान पर है,

---

* कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाला दल भारत के स्वराज्य की समस्या को किस प्रकार हल करना चाहता है, इसका कुछ अनुमान १९३१ की गोलमेज कानफ्रेन्स में दिये गये श्री घनश्यामदास विडला के भाषण से किया जा सकता है—"........अगर अमनचैन कायम रखना है तो यह जरूरी है कि या तो आप हमारी मर्जी से हम पर हुकूमत करें या हमको अपने ऊपर आप हुकूमत करने दें। इस अवस्था में हम आपके दोस्त और साझीदार हो सकते हैं। अगर इस मौके पर आपने हमसे कोई दोस्ताना समझौता न किया तो यह आपकी भयंकर भूल होगी। मैं अपने मुल्क के नौजवानों को अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत सम्भव है कि कुछ वर्ष बाद इँगलैण्ड को महात्मा गाधी, भारतीय नरेशों या मुझ जैसे पूँजीपतियों से समझौता न करके बिलकुल नये आदमियों से, नयी अवस्थाओं से, नये विचारों से, नयी आकांक्षाओं से निबटना पडे। इँगलैण्ड को सावधान हो जाना चाहिये।" "श्री घनश्यामदास विडला की पुस्तक 'डायरी के कुछ पन्ने' की भूमिका पृ० ६। भूमिका लेखक, श्री० विडला के सेक्रेटरी।

जो विदेशी साम्राज्य के लिये शोषण का साधन बनती है और स्वयम् भी शोषण करती है। आम जनता स्वराज्य चाहती है इसलिये कि शोषण बिलकुल समाप्त हो जाय। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी चाहती है शोषण की मौजूदा व्यवस्था क़ायम रहे और ब्रिटेन द्वारा किये जानेवाले शोषण का भाग भी उन्हीं को मिले। यदि शोषण की व्यवस्था ही समाप्त हो जाय तो इस श्रेणी का अस्तित्व भी नहीं रहता। इस श्रेणी का हित इस प्रकार के स्वराज्य में ही है जिससे व्यवस्था मे परिवर्तन हुए बिना शासन के काम में इन्हें अँग्रेज़ों के समान अधिकार हो। गाधीवादी प्रेरणा के अनुसार स्वराज्य को पुरानी व्यवस्था में ही सीमित रखने के लिये अहिंसा की हदबन्दी की जाती है। जब भी जन आन्दोलन का रुख पुरानी व्यवस्था को तोड़ने के लिये, पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी के हाथ से शक्ति ले लेने की ओर जाने लगता है, आन्दोलन रोक दिया जाता है। इस व्यवस्था को क़ायम रखते हुए स्वराज्य लेने का तरीक़ा यही है कि अँग्रेज़ों की शासक श्रेणी का हृदय परिवर्तन हो, वे भारत की पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी और अपने हितों को एक समझें, देश के शोषण में भारत की पूँजीपति जनता के अधिकार को स्वीकार करें। इसके लिये गाधीवादी नीति सौ वर्ष तक तपस्या करने को तैयार है।

गाधीवादी नीति को जब कभी ब्रिटिश सरकार के सुधार देने के वायदे पर संदेह होने लगता है, तब वह भी पूँजीपतियों के दृष्टि-कोण से ही। गोलमेज़ कानफ्रेंस के अवसर पर वायसराय के एलान से खीझकर महात्मा गाधी ने कहा था—"वायसराय तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करते रहना चाहते हैं जब तक कि भारत का प्रत्येक लखपति सात पैसे कमानेवाले मज़दूर की स्थिति को पहुँच जाय।" * लखपति भी सात

* कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६१६।

पैसे कमानेवाला मज़दूर बन जायगा ; यही भय गांधीवादी कांग्रेस को है, मज़दूर और किसान का क्या बनेगा ; उस ओर उसका ध्यान नहीं जाता।

जिस समय अंग्रेज़ों का हृदय परिवर्तन करने के लिये सौ वर्ष तक तपस्या करने का एलान महात्मा गांधी इंगलैण्ड में कर रहे थे, भारत मंत्री सर होर ने उन्हें इस तपस्या की निरर्थकता समझा दी। उन्होंने महात्मा गांधी को समझाया कि भारत में अंग्रेज़ जो कुछ कर रहे हैं अपने विचार और धारणा के अनुसार न्याय कर रहे हैं। इधर भारत सरकार के हृदय ने भी करवट बदल ली। इंगलैण्ड मे महात्मा गांधी की रसाई राजमहल तक हो सकी थी। भारत में बादशाह सलामत के कारिन्दे वायसराय बहादुर ने ही उनसे मुलाक़ात करने से इनकार कर दिया। फिर से सत्याग्रह का युद्ध छेड़ने का एलान हुआ परन्तु सरकार दाँव पर तैयार थी। कांग्रेसी नेताओं को मय महात्मा गांधी के, जेलों में बन्द कर दिया गया। महात्मा गांधी को जेल मे बन्द कर देने से आन्दोलन गांधीवादी सत्य और अहिंसा की नालियों से बिखर कर बहने लगा। आन्दोलन का ज़ोर नमक की अपेक्षा लगान बन्दी की ओर होने लगा। कांग्रेस जन अपने आपको जेल पहुँचाकर जीवन धन्य करने की अपेक्षा, जैसे भी बन पड़ा, सरकारी व्यवस्था में अड़चन डालने का यत्न करने लगे। कई जगह जनता इससे भी आगे बढ़ गई और वे तार काट देने तथा विद्रोह के दूसरे कामो से असंतोष प्रकट करने लगी। यहाँ तक कि दिल्ली में सन् १९३२ का कांग्रेस अधिवेशन गुप्त वेश में गोरिला ढंग से किया गया। यह उपाय उचित हैं या अनुचित, इस बात का चर्चा न कर यहाँ यही देखना है कि महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता पर से हटते ही आन्दोलन सार्वजनिक रूप धारण करने लगता है और म० गांधी की उपस्थिति उसे उनके सिद्धान्तों की सीमा मे समेटे रहती है। महात्मा गांधी ने

अनेक अवसरों पर अंग्रेज़ों को यह चेतावनी दी है कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को मासूम (Harmless) बनाये रहने का श्रेय उन्हीं को है। यदि सरकार उनकी बात को नहीं सुनती तो भय है कि भारत की प्रजा वैधानिकता का लिहाज़ छोड़कर आन्दोलन को घातक रूप दे दे। *

सन् १९३२ में आरम्भ होनेवाले आन्दोलन का अन्त भी विचित्र ढंग से हुआ। सत्याग्रह चल रहा था इस प्रश्न पर कि भारत के लिये शासन विधान बनाने का अधिकार अंग्रेज़ो को नहीं, भारतवासियो को है। कांग्रेस अंग्रेज़ों के बनाये शासन विधान को कभी मंजूर नही करेगी। ज़ाहिरा यह कहते रहने पर भी गाधीवादी कांग्रेस उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि विधान बनता कैसा है। विधान में अछूतों के वोट अलग होते देख हिन्दू सम्पत्तिशाली श्रेणी के हित को चोट पहुँचने की सम्भावना से महात्मा गाधी घबरा उठे और अनशन कर बैठे। सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था अंग्रेज़ों द्वारा तैयार किये जानेवाले शासन विधान को अस्वीकार करने के लिये। अनशन किया गया इसी विधान में सुधार करने के लिये। यदि शासन विधान को स्वीकार न करने की बात सच्चे हृदय से कही जा रही थी, तो उसमें सुधार कराने का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। अछूतो के वोट अलग किये जाने के विरोध में महात्मा गाधी ने आमरण उपवास किया था यह उपवास छठे दिन बन्द हो गया। आम जनता ने यह समझा कि ब्रिटिश सरकार महात्मा गाधी की आध्यात्मिक शक्ति और महात्याग से प्रभावित हो गई परन्तु बात यह थी कि सरकार बाल भर भी न हिली। हाँ, हिन्दू पूँजीपतियों के प्रतिनिधियो के प्रयत्न से अछूतों के लिये शासन विधान में दी गई रियायतो से दूनी रियायतें देने का वायदा कर दिया गया। कहने को ब्रिटिश सरकार का निश्चय बदल गया परन्तु शासन विधान की त्रुटि इससे दूर नहीं हुई।

* 'कांग्रेस का इतिहास' पृ० ६१९

कांग्रेस आन्दोलन को इस उपवास से क्या लाभ हुआ? महा गांधीवादी श्री पट्टाभि सीता रमैया को भी स्वीकार करना पड़ा कि महात्मा गांधी द्वारा अछूतों की समस्या की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कर लेने से राष्ट्रीय आन्दोलन को हानि हुई १।

सन् १६३२ के सत्याग्रह आन्दोलन का क्रम कुछ विचित्र-सा रहा। महात्मा गांधी तो सन् १६३१ में सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित अंग्रेज़ों का हृदय परिवर्तन करने के लिये गोलमेज़ कानफ्रेंस में चले गये उनके पीछे कुछ तो नौकरशाही के दमन जारी रखने के कारण और कुछ स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त करने की भावना आम जनता तक पहुँच जाने के कारण आन्दोलन की धूनी सुलगती ही रही। महात्मा गांधी गोलमेज़ कानफ्रेंस से असंतुष्ट होकर आ रहे थे। उनका विचार तो शायद आते ही आन्दोलन आरम्भ करने का नहीं था हालाँकि इंगलैण्ड में वे अपने बयानों में यही कहते रहे कि वे लौटकर सत्याग्रह शुरू करेंगे २। लौटकर लार्ड विलिंगडन को तार दे समझौता बनाये रखने की इच्छा भी उन्होंने प्रकट की ३। ब्रिटिश सरकार शत्रु को अवसर देने की नीति में विश्वास नहीं करती। महात्मा गांधी की बात दूसरी है, अपने विरोधी के आराम का ख्याल कर वे स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन में भी रविवार और प्रत्येक सरकारी छुट्टी के दिन सत्याग्रह बन्द कर देते हैं। साहब के शिकार में विघ्न नहीं पड़ना चाहिये, स्वराज्य भले ही एक दिन देर से सही। अस्तु, समझौते की इच्छा प्रकट करने पर भी सरकार ने आर्डिनेन्स जारी कर महात्मा गांधी तथा उनके दल बल को गिरफ़्तार कर जेलों में पहुँचा दिया। आन्दोलन चला तो गांधीवादी

---

१ 'कांग्रेस का इतिहास' पृ० ५६५। २ महात्मा गांधी की मि० चर्चिल के पुत्र से मुलाकात, 'डायरी के कुछ पन्ने' पृष्ठ ५०। ३ 'कांग्रेस का इतिहास' पृष्ठ ५२६।

नीति पर ही था परन्तु कमान और देख रेख का काम महात्मा गाधी न कर सके इसलिये वह चोटी के लीडरो के बिना ही देश भर में फैल गया। यह जानते हुए भी कि किसान वास्तव में ही लगान अदा नहीं कर सकते, कांग्रेस यद्यपि गाधीवादी नीति नहीं चाहती थी कि आन्दोलन लगान बन्दी का रूप ले परन्तु जनता इसी बात पर ज़ोर दे रही थी। आखिर बहुत मजबूर होकर बेबसी की हालत में कांग्रेस को सरकार से समझौता हो जाने तक के समय के लिये लगान मुल्तवी की इजाज़त देनी पडी *। आन्दोलन ने उग्ररूप धारण कर लिया यहाँ तक कि लगभग नव्वे हज़ार व्यक्ति जेल पहुँच गये। ऊपर बताई गई परिस्थिति से स्पष्ट है कि इस आन्दोलन के बारे मे गाधीवादी नेता और जनता की राय एक न थी। महात्मा गाधी जेल मे बन्द होने के कारण आन्दोलन पर नियंत्रण नही रख सकते थे। ऐसी अवस्था मे सन् १९३२ सितम्बर मे उन्होंने अछूतों की वोटों के प्रश्न पर अनशन कर दिया। इस अनशन का प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन पर जो पडा वह हम ऊपर बता आये हैं, अर्थात् आन्दोलन मे शिथिलता आ गई। उपवास आरम्भ करने से पहले महात्मा गाधी ने एक बयान प्रकाशित किया—"यह उपवास उन लोगों के विरुद्ध है जिनका मुझ पर विश्वास है। चाहे वे भारतीय हो या विदेशी। यह उपवास उनके विरुद्ध नहीं जिनका मुझ पर विश्वास नहीं। इस उपवास का प्रधान उद्देश्य तो हिन्दू अन्तःकरण मे ठीक-ठीक धार्मिक कार्यशीलता उत्पन्न करना है।" † हिन्दुओ के हृदय में क्या कार्यशीलता पैदा हुई इसका कोई वर्णन कहीं नहीं मिलता परन्तु महात्मा गाधी का विश्वास है कि उनका प्रत्येक उपवास देश का कल्याण कर उसे उन्नति की ओर ले जाता है। हमें गाधीवाद की नीति को हिन्दू धर्म के हानि लाभ की दृष्टि से नही, परन्तु राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से देखना

* कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ ५१८। † कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ ५६२।

है और इसका उत्तर हमें श्री पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में मिल चुका है।

आन्दोलन चल रहा था परन्तु गाधीवादी नीति पर नहीं। राष्ट्रीय अन्दोलन करनेवालों और सरकार में दाव-पेच हो रहे थे' काग्रेस शस्त्र उठाने के उपाय को छोड़कर दूसरे सभी उपायो से सरकार का काम रोकने का यत्न कर रही थी। महात्मा गाधी ने एक बयान निकाल कर इस तरीक़े की निन्दा की। परन्तु काग्रेस करती क्या ; उनके पास दूसरा उपाय न था। महात्मा गाधी के एक अनशन का प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन पर देखा जा चुका था। महात्मा गाधी ने मई १६३३ में दूसरे अनशन का एलान किया। यह अनशन अपनी तथा हरिजन आन्दोलन के कार्यकर्ताओं की पवित्रता के लिये महात्मा गाधी ने करने का निश्चय किया था। इस अनशन की ख़बर पा सरकार ने हुकुम दिया कि जिस भाव और उद्देश्य से महात्मा गाधी उपवास कर रहे हैं, उसे ध्यान में रख उन्हे रिहा कर दिया जाय। महात्मा गाधी रिहा कर दिये गये। महात्मा गाधी को मौक़ा मिल गया। रिहा होते ही उन्होंने छः हफ्ते के लिये सत्याग्रह मौकूफ कर देने की सिफारिश की। सरकार से भी उन्होने अपील की कि यदि वह देश में शान्ति चाहती है, तो उसे सब सत्याग्रहियों को रिहा कर देना चाहिये। इसके बाद वे काग्रेस और सरकार में समझौता कराने का यत्न करेंगे। महात्मा गांधी की अपील काग्रेस ने तो मान ही ली परन्तु सरकार ने ठुकरा दी। सरकार को ऐसा "सौदा" मंजूर न था। सत्याग्रह दूसरी दफे फिर छः हफ़्ते के लिये मौकूफ किया गया और महात्मा गाधी ने वायसराय से मिलकर उन्हें अपनी नेकनीयत का विश्वास दिलाने की आज्ञा माँगी। फिर भी आज्ञा न मिली। महात्मा गाधी और नेता भयकर दुविधा में पड़ गये। जिस प्रकार आन्दोलन चल रहा था, वह तरीक़ा महात्मा गाधी को मंजूर न था और जिस तरह वे चाहते थे उस तरह आन्दोलन चल

नहीं सकता था। सरकार हृदय परिवर्तन करने के लिये तैयार न थी। आख़िर कांग्रेस का सम्मान क़ायम रखने का यह उपाय निकाला गया कि व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी किया जाय। कांग्रेस कमेटियों और युद्ध कमेटियों को बरख़ास्त कर दिया गया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया सबसे पहले महात्मा गांधी ने। उन्होंने साबरमती आश्रम को तोड़ दिया। असहयोगी होने के नाते साबरमती आश्रम की भूमि पर वे लगान अदा नहीं कर सकते थे इस-लिये आश्रम की भूमि उन्होने सरकार की ही नज़र करदी। असहयोग का यह ढंग सांसारिक बुद्धि से नहीं, आध्यात्मिक बुद्धि से ही समझा जा सकता है। असहयोग के इस कार्य को सफल समझा जाय या अस-फल कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि सरकार ने भूमि लेने से इन-कार कर दिया। यदि दीनता दिखाकर सरकार का हृदय पिघलाना ही उद्देश्य था तो उसमें भी सफलता नहीं मिली। इस घटना और पिछली घटना को देखने से असहयोग कांग्रेस की ओर से नहीं, सरकार की ओर से ही हुआ। महात्मा गांधी फिर पकड़े गये। जेल में असुविधा होने के कारण उन्होंने अनशन किया और छूट गये *। छूट जाने पर फिर सत्याग्रह करना उन्हे सत्य और अहिंसा के विरुद्ध जँचा।

सत्याग्रह के इस लम्बे-चौड़े अनुभव के बाद महात्मा गांधी ने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य ७ अप्रैल १९३४ के दिन प्रकाशित किया। इसी वक्तव्य में कांग्रेस के लिये आगे का प्रोग्राम था। इस वक्तव्य के कुछ महत्वपूर्ण अंग इस प्रकार हैं:—

"मैंने इस वक्तव्य का मसविदा अपने मौन दिवस में सरसा नामक स्थान पर २ अप्रैल को तैयार किया था।........मेरे वक्तव्य का एक-एक शब्द गहन आत्म-चिन्तन, हृदय की टटोल और ईश्वर प्रार्थना का परिणाम है। †

* कांग्रेस का इतिहास पृ० ५७६। † कांग्रेस का इतिहास पृ० ५८२।

"......"मैं अनुभव करता हूँ जनता को सत्याग्रह का पूरा संदेश नहीं मिला है ; क्योंकि संदेश जनता तक पहुँचते-पहुँचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह प्रतीत हो गया है कि आध्यात्मिक संदेश पार्थिव-माध्यम (दुनियावी तरीक़ों) द्वारा पहुँचाने से उसकी शक्ति कम होजाती है। आध्यात्मिक संदेश तो स्वयम् ही अपना प्रचार कर लेते हैं।...."*

महात्मा गाधी ने अपने अनुभव से जान लिया कि सत्याग्रह का आध्यात्मिक संदेश तो अचूक और कभी असफल न होनेवाली शक्ति है परन्तु यह सदेश जनता तक रेल, तार, डाक या दूसरे ऐसे तरीक़ों से पहुँचता है जो आध्यात्मिक न होकर भौतिक हैं, इसलिये इस संदेश की शक्ति निर्बल पड जाती है। इस अनुभव के बाद भी उनके आध्यात्मिक संदेश जनता तक इन्हीं सब साधनों द्वारा ही पहुँचते हैं। तब इन सदेशो की सफलता की आशा वे किस प्रकार कर सकते हैं ? इस तर्क को हम यदि एक क़दम और आगे बढायें तो भयंकर दुविधा में पड जाते हैं। मनुष्य का शरीर और इन्द्रियाँ पार्थिव यानी भौतिक पदार्थ हैं। जिस आध्यात्मिक सदेश को महात्मा गाधी अपने भौतिक शरीर की जिह्वा से कह देते हैं, वह संदेश भौतिक पदार्थ के सम्बन्ध मे आते ही अशुद्ध या निर्बल हो जाता है। इससे एक क़दम और आगे बढ़िये, कोई व्यक्ति कितना ही बडा महात्मा क्यों न हो, उसका दिमाग़ भौतिक पदार्थों से ही बना होगा। ऐसी हालत में ज्यों ही सदेश महात्मा के विचार या मस्तिष्क में आया, वह अशुद्ध हो जायगा। अभिप्राय यह है कि आध्यात्मिक सदेश चाहे वह कितनी ही प्रबल शक्ति क्यों न हो पृथ्वी पर शरीर धारण करनेवाले मनुष्य के काम नहीं आ सकता। यह जानकर भी गाधीवाद मनुष्य का कल्याण आध्यात्मिक संदेश द्वारा ही करने पर तुला हुआ है।

सत्याग्रह की आध्यात्मिक शक्ति चाहे जितनी बडी हो परन्तु उसकी

---

* कांग्रेस का इतिहास पृ० ५८३।

सफलता के बारे में महात्मा गाधी की राय यह है:— "........अनेक व्यक्तियों के जैसे तैसे सत्याग्रह का परिणाम चाहे कितना ही बड़ा रहा हो, पर वह न तो आतंकवादियों के ही हृदयों तक पहुॅच सका, न शासक वर्ग के हृदयों तक, शुद्ध सत्याग्रह का दोनों के ही हृदयो तक पहुॅचना अनिवार्य है।........इसकी सत्यता की जाँच करने के लिये सत्याग्रह एक समय में एक ही आदमी को करना चाहिये........" * अपने अनुभव से महात्मा गाधी जिस परिणाम पर पहुॅचे हैं, उसमें हम इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि सत्याग्रह साधनहीन लोगों के शरीर की शक्ति का शोषण करनेवाले पूँजीपति लोगों के हृदय तक भी नहीं पहुँच सका। अस्तु यह सब देखकर महात्मा गाधी ने निश्चय किया कि आइन्दा सत्याग्रह करने का अधिकार केवल उन्हीं को होगा। जनता के लिये उनका संदेश यह था:—

"........आयन्दा से वे लोग जो मेरे प्रत्यक्ष दिये गये या अप्रत्यक्ष रूप से समझे गये परामर्श के अनुसार स्वराज्य प्राप्ति के लिये सत्याग्रह करने को प्रेरित हुए हों, कृपाकर सत्याग्रह करने से रुक जायँ।" †

महात्मा गांधी के इस एलान से पाँच वर्ष के सत्याग्रह आन्दोलन का अन्त हो गया। सत्याग्रह समाप्त करने के एलान के साथ सत्याग्रह आरम्भ करने के एलान की तुलना करना बे मौक़ा न होगा। २७ फ़रवरी सन् ३० का वह एलान यों था:—

"इस दफे सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन आरम्भ होने पर रुक नहीं सकेगा और उस समय तक नही समाप्त होगा जब तक कि एक भी सत्याग्रही जेल से बाहिर रहेगा या जीवित रहेगा।"

पहले सत्याग्रह आन्दोलन मे गाधीवादी ने नीति एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने की प्रतिज्ञा को जिस प्रकार पूरा किया उसी प्रकार

---

* कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ ५८४। † कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ ५८४।

दूसरे सत्याग्रह आन्दोलन की आमरण सत्याग्रह युद्ध की प्रतिज्ञा को भी पूरा कर दिखाया। इस सब असफलता के बावजूद भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की नकेल गाधीवादी नीति के ही हाथ में है। हमारे राजनीतिज्ञों को गाधीवादी नीति के सिवा राष्ट्रीय आन्दोलन का कोई दूसरा उपाय ही दीखता नहीं।

क़िस्मत की बात, जिस समय महात्मा गाधी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित करने का यह बयान 'सरसा' में तैयार किया उसी समय दिल्ली में स्वर्गीय डाक्टर अन्सारी ने कौन्सिलों में जाकर स्वराज्य के लिये युद्ध करने का काग्रेसी एलान तैयार कर लिया था। महात्मा गाधी ने १९२४ मे असहयोग और कौन्सिल प्रवेश का मेल असम्भव समझा था परन्तु १९३४ में उन्होंने कौन्सिल प्रवेश के प्रस्ताव का स्वागत किया। हुआ वही जो होना था, सत्याग्रह के आन्दोलन ने फिर कौन्सिलों के मरघट में जाकर विश्राम लिया।

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि तीसरे सत्याग्रह आन्दोलन का परिणाम क्या होगा? इस प्रश्न का विचार करने से पहले हम गाधीवाद के क्रियात्मक कार्य-क्रम पर एक नज़र डाल लेना आवश्यक समझते हैं।†

---

† समाजवाद की दूसरे वादों नाज़ीवाद, प्रजातंत्रवाद, गांधीवाद, अराजकवाद आदि से जानने के लिये का० यशपाल की पुस्तक मार्क्सवाद मूल्य १॥) उपयोगी होगी। विप्लव कार्यालय, लखनऊ से प्राप्य।

गांधीवाद और समाजवाद

समाजवाद का चोला

सन् १६३४ के बाद से कांग्रेस का क्रान्तिकारी कार्य-क्रम वैधानिक सुधारों को क्रियात्मक रूप देने की ओर बह गया। सन् १६२० के आन्दोलन के बाद ही कांग्रेस के कुछ लोग आन्दोलन को वैधानिक कशमकश में न फँसाकर सार्वजनिक रूप देने की माँग करने लगे थे। १६३४ मे यह बात बहुत स्पष्ट हो गई। राजनैतिक कार्यकर्ता मेहनत करनेवाली जनता के सम्पर्क में आये। उनकी अवस्था और शक्ति का उन्हे ज्ञान हुआ। उन्होने अनुभव किया कि विदेशी साम्राज्यशाही के विरुद्ध जनता का यही भाग लड़ सकता है। शोषण और गुलामी इस श्रेणी के लिये जीवन-मरण का प्रश्न है। इनके सामने सम्पत्ति-शाली श्रेणी की तरह कम या अधिक अधिकारों से संतुष्ट हो जाने का प्रश्न नहीं।

व्यापक जाग्रति के कारण किसान, मज़दूर तथा नौकरी पेशा लोग भी शासन और व्यवस्था में परिवर्तन कर अपनी अवस्था सुधारने की बात सोचने लगे। आन्दोलन मे इस नयी प्रवृत्ति का आधार केवल विदेशी शासन के प्रति भावुकता भरी घृणा और देश भक्ति ही नहीं। शोषक चाहे हिन्दुस्तानी हों या विदेशी, सभी के हाथ से शोषण का अधिकार यह लोग ले लेना चाहते हैं। इनकी माँग है आम जनता के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों को कांग्रेस के कार्य-क्रम में स्थान हो। स्वराज्य का रूप स्पष्ट किया जाय। कांग्रेस की नीति शोषण समाप्त कर मेहनत करनेवाली जनता के हाथ मे शासन का अधिकार देना हो। इस भावना से मज़दूर संगठनों ने राजनीति मे भाग लेना

शुरू किया और किसान समायें भी क़ायम होने लगीं। देश में पूँजी-वाद का विकास हो जाने से इस प्रकार के आन्दोलन के लिये परि-स्थितियाँ पैदा हो चुकी थीं परन्तु इसकी प्रेरणा आई शोषितों के उस संसार व्यापी आन्दोलन से, जो कम्यूनिज़्म और समाजवाद के सिद्धांतों के अनुसार संसार से शोषण की व्यवस्था को समाप्त कर श्रेणी रहित जन समाज की स्थापना करना चाहता है।

यह आन्दोलन आरम्भ में कांग्रेस के संगठन के बाहर ही आरम्भ हुआ। जिन लोगों ने इस आन्दोलन का बीज भारत में बोया, कांग्रेस में पूँजीवादी श्रेणी की प्रधानता को देख वे उस पर भरोसा न कर सके। स्वयम् कांग्रेस में भी पुकार उठने लगी कि स्वराज्य का अर्थ सर्व साधारण जनता के जीवन में आनेवाली कठिनाई दूर कर उन्हें आत्म-निर्णय का अधिकार देना होना चाहिये। कांग्रेस का यह अंग मध्यम श्रेणी का भाग था। पूँजीपति श्रेणी के हित के लिये राष्ट्र की शक्ति का उपयोग इन्हें खटकने लगा परन्तु इनकी कल्पना बिलकुल साधनहीन जनता (Proletariat) का शासन क़ायम करने की न थी। समाजवाद के सिद्धान्त इन्हे ठीक जान पड़े क्योंकि यह श्रेणी साधन-हीन जनता की सहायता से पूँजीवादी श्रेणी के एक छत्र अधिकार को तोड़कर अपना अधिकार क़ायम करने की आशा कर सकती थी। इस श्रेणी के नेता के रूप में पं० जवाहरलाल ने समाजवाद की ओर जनता का ध्यान दिलाया, कांग्रेस में आदर्शों और कार्य-क्रम की छान-बीन की प्रवृत्ति पैदा हुई। कांग्रेस की जागृति मध्यम श्रेणी ने आँखें खोलकर देखा, देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना विरासत के रूप में पूँजीपति श्रेणी अंग्रेज़ों से जिस प्रकार का स्वराज्य लेना चाहती है, उसमें मध्यम श्रेणी का कोई महत्व न होगा। पूँजीवाद का शीघ्रगामी विकास उन्हे भी तुरंत ही साधनहीन श्रेणी के दायरे में पहुँचाकर बेबस कर देगा। इस सत्य को अनुभव कर शिक्षित

मध्यम श्रेणी की सहानुभूति मेहनत करनेवाली, शोषित आम जनता के प्रति होने लगी। मध्यम वर्ग की इस राजनैतिक चेतना ने समाजवादी विचारों को प्रोत्साहन दिया, स्वयम् कांग्रेस में समाजवादी दल की स्थापना हो गई।

कांग्रेस के बाहर कम्यूनिस्ट और कांग्रेस के भीतर समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस के राजनैतिक कार्यक्रम की आलोचना शुरू की और अधिक व्यापक और उग्र कार्य-क्रम की तजवीज़ कर जनता की सहानुभूति को आकर्षित करना शुरू किया। देश के राजनैतिक क्षेत्र में यह लोग गांधीवादी कांग्रेस नीति के प्रतिद्वन्दी बन गये। यह लोग न केवल एक दूसरा राजनैतिक उद्देश्य लेकर आये, बल्कि इनकी विचारधारा ही दूसरी है। दोनों के सामाजिक और राजनैतिक आदर्श अलग-अलग हैं। गांधीवाद का राजनैतिक उद्देश्य है, भारत की सामाजिक अवस्था में उथल-पुथल किये बिना विदेशी सरकार के हाथ से आज़ादी प्राप्त करना। भारत के समाजवादी चाहते हैं, देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्था में आमूल परिवर्तन करना। समाज में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना कि कोई श्रेणी दूसरी श्रेणी पर शासन न कर सके, न कोई देश दूसरे देश पर शासन कर सके।

राजनैतिक या सामाजिक क्षेत्र में कोई भी कार्य-क्रम जनता के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। जनता का विश्वास और सहयोग ही क्रान्ति की एकमात्र शक्ति है। किसी भी कार्य-क्रम की सफलता के लिये जनता का सहयोग और शक्ति ज़रूरी है। चाहे तो जनता अपने हितों को पहचानकर स्वयं अपने हाथ में शक्ति प्राप्त करने के लिये अपनी शक्ति लगाये, चाहे जनता को विश्वास के चक्कर में फँसाकर शोषक श्रेणी उनका सहयोग प्राप्त करले। जनता की शक्ति के बिना कुछ हो नहीं सकता। जब तक कांग्रेस को जनता का सहयोग न मिला, वह एक निर्बल संस्था बनी रही। गांधीवादी नीति के

अनुसार जनता की ग़रीबी का चर्चा कर, जनता को आन्दोलन में कुर्बानी का अवसर देकर कांग्रेस ने सर्वसाधारण की सहानुभूति अपनी ओर करली। कांग्रेस की गांधीवादी नीति ने जनता की ग़रीबी का चर्चा किया, जनता के प्रति सहानुभूति दिखाई परन्तु शक्ति जनता के हाथ मे देने की बात कभी न कही। तिस पर भी कांग्रेस का कार्य-क्रम दूसरे राजनैतिक दलों की अपेक्षा जनता को अधिक अपना जान पड़ा और कांग्रेस सभी राजनैतिक दलों से अधिक बलवान बन गई। इस बात में समाजवादी विचारधारा का कार्य-क्रम गांधीवादी राजनीति से आगे निकल जाता है। जनता इस कार्य-क्रम पर अधिक विश्वास कर सकती है। समाजवादी कार्य-क्रम समाज की व्यवस्था इस ढंग से क़ायम नहीं करना चाहता कि जनता को कुर्बान करके ठाकुर लोगों के स्वार्थ पूरे होते रहे। वह समाज की व्यवस्था और शासन का अधिकार जनता के हाथ में ही सौंपना चाहता है। जनता की दुख भरी हालत की ओर तो वह ध्यान दिलाता ही है परन्तु इसके साथ ही वह इस दुर्दशा के वास्तविक कारणों को भी प्रकट करता है और एक क्रान्तिकारी कार्य-क्रम भी पेश कर सकता है। शोषित जनता में जागृति आते ही वह इस बात को ज़रूर अनुभव करती है कि उनकी मेहनत का फल उनसे छीन लिया जाता है, ऐसा नहीं होना चाहिये। वे इस बात को समझने लगते हैं कि उनकी मेहनत से पैदा ज़रूरत की चीज़ों से बाज़ार पटे पड़े हैं परन्तु उनकी ज़रूरत पूरी नहीं हो सकती। वे अनुभव करते हैं कि मेहनत करनेवाली श्रेणी के परिश्रम से समाज मे पैदावार के ऐसे साधन और शक्ति तैयार है, जिससे ज़रूरतमन्दों की तकलीफ दूर होनी चाहिये, पर ऐसा नहीं हो पाता। लाखों आदमी मेहनत करने और अपना पेट भरने का अवसर नहीं पाते। एक ओर तो लोग आवश्यक पदार्थों के बिना तकलीफ़ पाते हैं, दूसरी ओर लोगों को आवश्यक पदार्थ पैदा करने का अवसर

न दे बेकार बना दिया जाता है। पैदावार के साधन होते हुए और पैदावार की आवश्यकता होते हुए भी किसी को बेकार क्यों रखा जाय ? जनता यह भी अनुभव करती है कि पैदावार के साधनों और पैदावार का ग़लत उपयोग होने की जिम्मेवारी उन्ही लोगों पर है जिनका इन वस्तुओं पर अधिकार है, जो इनके मालिक बने हुए हैं। पैदावार के जिन साधनों को हज़ारों आदमी मिलकर चलाते हैं, जो साधन हज़ारों लाखों आदमियों के उपयोग के लिये पदार्थ तैयार करते है, उनके व्यक्तिगत सम्पत्ति बनने से उनका उपयोग हज़ारो लाखो व्यक्तियों के हित के विचार से नहीं, एक व्यक्ति के मुनाफे के लिये होता है। समाजवादी विचार धारा इस सब संकट से समाज को बचाने का क्रियात्मक उपाय भी जनता को बताती है।

सम्पत्ति की मालिक श्रेणी, उसकी धन-दौलत की शक्ति चाहे जितनी बड़ी हो, समाज में उसकी संख्या आटे में नमक के बराबर है। यह श्रेणी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण समाजवादी विचारधारा से घबराती है और अपना नुक़सान समझ सकती है। परन्तु हज़ार में से नौ सौ निन्नानवे जनता इस कार्य-क्रम से साहस और उत्साह प्राप्त करती है। उसके पास कुछ है ही नहीं, उससे छीना क्या जायगा ? अगर वह कुछ खो सकती है तो केवल उसे शोषण में जकड़े रखनेवाले बन्धनों को जिन्हें खोकर वे स्वतंत्र हो जायँगे।

मध्यम श्रेणी के शिक्षित व्यक्ति भी जो दूरदर्शिता से काम लेते हैं, जो अपने आपको समाज का अंग समझकर समाज के कल्याण में अपना कल्याण समझते हैं, सम्पूर्ण समाज के विकास के विचार से समाजवादी कार्य-क्रम की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकते। यही कारण है, कि संसार भर की पूँजी और साधन समाजवादी विचार धारा के विरुद्ध होते हुए भी साधनहीन श्रेणी का यह आन्दोलन संसार का सबसे अधिक विस्तृत और बलवान आन्दोलन बन गया।

भारत के राजनैतिक क्षेत्र मे भी यह भावना इतनी तेज़ी से फैली कि काग्रेस का नियंत्रण करनेवाली श्रेणी और गाधीवाद इससे घबरा उठे।

समाजवादी विचारधारा का उद्देश्य है, समाज मे सब व्यक्तियो को कमाई या पैदावार करने का अवसर समान रूप से मिले और सब व्यक्तियो को अपने परिश्रम से की गई पैदावार पर समान रूप से अधिकार हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये समाजवाद उपाय बताता है कि पैदावार के साधनो को समाज की सम्पत्ति बना दिया जाय। मनुष्य का जीवन पैदावार (जीवन रक्षा) के साधनो पर निर्भर करता है। जो व्यक्ति या श्रेणी जीवन रक्षा के साधनो की मालिक होगी, वही व्यक्ति या श्रेणी समाज के मालिक हो जायँगे और शेष व्यक्तियों या समाज को ऐसे मालिकों के हितों को पूरा करने के लिये अपना जीवन लगाना पड़ेगा। समाज से मालिक और दास, शोषक और शोषित का भेद मिटाने के लिये समाज में अधिकार और अवसर की समानता लाने के लिये एक हीउपाय है कि पैदावार के साधनों पर किसी व्यक्ति या श्रेणी का हक़ न हो, किसी को ऐसा अवसर या अधिकार न हो कि दूसरो के जीवन की स्वतंत्रता छीन सके। समाज की व्यवस्था इस ढंग पर होने से ही सब व्यक्तियों को समान रूप से स्वतंत्रता मिल सकती है और सम्पूर्ण समाज स्वतंत्र हो सकता है। जनता अपने चारों ओर जीवन के मार्ग में रुकावटें और अड़चने देखती है। समाजवाद उसे जीवित रहने और विकास का अवसर देने के लिये तैयार है इसलिये उसकी ओर जनता की सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है।

गाधीवाद मनुष्य के जीवन का उद्देश्य परमेश्वर से साक्षात्कार करना बताता है परन्तु उसके साथ ही उसका एक सासारिक या राजनैतिक उद्देश्य भी है। यह उद्देश्य 'रामराज्य' की स्थापना है। रामराज्य का रूप चाहे जैसा हो, इसमे लाभ चाहे जिस किसी का हो, इसे क़ायम

करने के लिये जनता की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करना ज़रूरी है। एक समय भारत के राजनैतिक क्षेत्र में सबसे अधिक उग्र कार्य-क्रम पेश करने और आम जनता के प्रति सहानुभूति दिखाने के कारण जनता का आकर्षण गाधीवाद के राजनैतिक कार्य-क्रम की ओर होगया था। परन्तु इस कार्य-क्रम से कुछ फल निकलता न देख और मुक़ाबिले में समाजवादी विचार धारा आ जाने से जनता उस ओर खिंचने लगी। सन् १६२० के आन्दोलन के बाद से विशेष कर १६३४ से गाधीवाद भारत की जनता पर अपना प्रभाव क़ायम रखने के प्रयत्न में लगा हुआ है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये गाधीवाद ने जनता के धर्म प्रेम की शरण ली। वह क्रमशः धार्मिकता का रूप लेने लगा। १६२० में वह एक शुद्ध राजनैतिक आन्दोलन के रूप में जनता के सामने आया परन्तु उसके बाद से वह नैतिकता—जीवन की फिलासफी-का रूप धारण करने लगा। यहाँ तक कि देश के राजनैतिक उद्देश्य स्वराज्य से भी ऊँचा स्थान उसने संसार में सत्य, अहिंसा और न्याय की स्थापना पर दिया। गाधीवाद को इतनी व्यापक वस्तु बनाने का प्रयोजन है, जनता की सत्य, अहिंसा और न्याय की भावना के नाम पर अपील कर उनके मस्तिष्क पर प्रभाव डालना।

गाधीवादियों की नीति समझने के लिये एक बात की ओर और ध्यान देने की आवश्यकता है। कुछ लोगों का विश्वास तो गांधीवाद में इसलिये है कि आध्यात्मिकता, वैराग्य और त्याग पर श्रद्धा के संस्कारों के कारण वे इसे मुक्ति का मार्ग समझते हैं, सासारिक उन्नति और समृद्धि के झगड़े में फँसने की उन्हे ज़रूरत नहीं। दूसरे लोग ठाकुर श्रेणी के हैं, गाधीवाद की नीति से उनके हितों की रक्षा होती है। जब यह प्रश्न आता है कि संकटों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय जनता समाजवाद से करे या गाधीवाद से, तब साधनों की मालिक ठाकुर श्रेणी की सम्पूर्ण शक्ति समाजवाद के विरोध में गाधीवाद के

समर्थन के लिये खड़ी हो जाती है। गाधीवाद के समर्थन के लिये चाहे जनता के हृदय से आवाज़ न भी उठे, परन्तु ठाकुर श्रेणी की इच्छा से प्रचार के सभी साधन जनता के प्रतिनिधि बन एक स्वर से चिल्ला कर कहने लगते हैं—गाधीवाद ही हमारे लिये एक मात्र मार्ग है और महात्मा गाधी ही दरिद्र और साधनहीन श्रेणी के एक मात्र अराध्यदेव हैं। जनता को राजनैतिक आन्दोलन के मोर्चे पर लाने के बाद जब गाधीवाद ने अनुभव किया कि अपने हितो को प्राप्त करने के लिये जनता गाधीवाद के राजनैतिक उद्देश्य ठाकुरशाही के शासन, रामराज्य को ही समाप्त कर देना चाहती है तो गाधीवाद ने राष्ट्र की राजनैतिक भावना को रचनात्मक कार्य-क्रम मे बहा देने का प्रयत्न करना शुरू किया।

गाधीवाद का रचनात्मक कार्य-क्रम है क्या? जनता अपनी अवस्था से असंतुष्ट हो कर शोषण की व्यवस्था को बदल देना चाहती है। गाधीवाद का प्रयोजन है पुरानी व्यवस्था की रक्षा करना, इसलिये गाधीवाद जनता को समझाता है कि तुम्हारे असंतोष के कारणो को रचनात्मक कार्य-क्रम द्वारा दूर किया जा सकता है, व्यवस्था को बदलने की बात छोडो! जनता की राजनैतिक प्रगति और आर्थिक कारणों से पैदा होनेवाले असंतोष के प्रवाह को रचनात्मक कार्य-क्रम के रेगिस्तान में सुखा देने का प्रयत्न ही भारत की ठाकुरशाही की रक्षा का एकमात्र साधन गाधीवाद को मिला है। मज़ा यह है कि रचनात्मक कार्य-क्रम जोकि स्पष्टतौर पर आर्थिक प्रश्न है, उसे भी आध्यात्मिक रंग देने की चेष्टा की जाती है ताकि जनता उपयोगिता के विचार से उसकी जाँच न कर, भगवान से साक्षात्कार का उपाय समझ कर स्वीकार कर ले।

यह देखकर कि शोषण का अन्त कर समानता लानेवाला समाजवाद का कार्य-क्रम जनता को अपील करता है, जनता पर अपना प्रभाव क़ायम रखने के लिये गांधीवाद ने भी अपने कार्य-क्रम का

उद्देश्य शोषण का अन्त और समानता लाना बताया। भारतीय जनता की रुचि उस ओर खींचने के लिये अपने कार्य-क्रम को गाधीवाद ने अहिंसात्मक साम्यवाद, आध्यात्मिक साम्यवाद, भारतीय साम्यवाद आदि नाम दिये। जनता को यह विश्वास दिलाने का यत्न किया गया कि गाधीवाद से समाजवाद के सब उद्देश्य पूरे हो जायँगे। गाधीवाद को एतराज़ है केवल समाजवाद के कार्य-क्रम से क्योंकि उसमें श्रेणी संघर्ष और हिंसा है, उससे मनुष्य और समाज भगवान् से विमुख हो जाते हैं। गोया कि गाधीवाद मे समाजवाद की पश्चिमी सभ्यता से आनेवाली सभी बुराइयाँ निकालकर उसे शुद्ध और आध्यात्मिक बना दिया गया है *।

भारतवासियों को यह भी समझाया जाता है कि पश्चिम की परिस्थितियों में पैदा हुए सिद्धान्त भारत की सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल नहीं हो सकते, दोनों देशों के दृष्टि-कोण में अन्तर है। समाजवाद के सिद्धान्त भारत के लिये लागू नहीं हो सकते क्योंकि वे पश्चिम में पैदा हुए हैं परन्तु साबरमती आश्रम में पैदा हुए सिद्धान्तों के पोलैंड, आस्ट्रिया और इंगलैंड में फिट आ जाने की आशा कर उन्हें गधीवाद का उपदेश मज़े में दिया जा सकता है †। यदि किन्हीं सिद्धान्तों को केवल इसलिये हेय समझ लिया जाय कि वे भारत में पैदा नहीं हुए तो भारत का दर्शन शास्त्र भी केवल भारत के लि ये ही रह जायगा। इस प्रकार की द्वेश पूर्ण देशभक्ति से संसार में कभी शान्ति नहीं हो सकती। समाजवाद का सिद्धान्त है कि मनुष्य का जीवन पैदावार के साधनो

---

* 'गाधीवाद समाजवाद' पृष्ठ ६७। † आस्ट्रिया और पोलैण्ड पर नाज़ियों का आक्रमण होने पर महात्मा गांधी ने उन्हें गाधीवादी सत्याग्रह द्वारा शत्रु का सामना करने का उपदेश दिया था। इसी प्रकार इँगलैण्ड को भी महात्मा गाधी जर्मनी के आक्रमण का सामना निशस्त्र होकर करने की सलाह दे चुके हैं।

पर निर्भर करता है। पैदावार के साधनों पर जिस व्यक्ति या श्रेणी का अधिकार होगा उसीके फैसले और हित के विचार से समाज की व्यवस्था चलेगी। समाज में सार्वजनिक हित के विचार से पैदावार के साधनों पर जनता—वे लोग जो किसी-न-किसी प्रकार पैदावार के लिये परिश्रम करते हैं—का अधिकार होना चाहिये। परिश्रम से पैदावार करनेवालों से उनके परिश्रम का फल छीन लेना हिंसा है। यही समाज में विरोध का कारण है इस हिंसा और विरोध को दूर करने के लिये, इनके कारणों को दूर करना चाहिये।

गाधीवाद यह स्वीकार करता है कि समाज में हिंसा, अन्याय और शोषण के कारण जनता का जीवन असम्भव हो रहा है। वह यह भी स्वीकार करता है कि इस संकट का कारण पूँजीवादी और जमींदारी व्यवस्था का शोषण है और यह शोषण दूर होना चाहिये। समाजवाद के उद्देश्य को गाधीवाद स्वीकार करता है परन्तु इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये व्यवस्था के परिवर्तन का जो कार्य-क्रम समाजवाद पेश करता है, उसे गाधीवाद स्वीकार नहीं करता। गाधीवाद को एतराज़ है कि इस कार्य-क्रम में हिंसा है।

गाधीवाद का दावा है कि मिल्कीयत की व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना ही—पूँजीपतियों और ज़मींदारों को पैदावार के साधनों का मालिक रहने देते हुए भी सत्य और अहिंसा के पालन से सब सामाजिक वैर, विरोध, हिंसा और शोषण दूर हो सकता है। मेहनत करने वाली श्रेणी को गाधीवाद यह अधिकार नहीं देता कि पैदावार के साधनों पर जनता का अधिकार क़ायम करें। परन्तु पूँजीवादियों और ज़मींदारों को गाधीवाद उपदेश देता है कि उन्हें अहिंसा और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। गाधीवाद में अहिंसा और अपरिग्रह का अर्थ है कि पूँजीपति और ज़मींदार मुनाफे से सञ्चित धन का न तो अपनी नितान्त ज़रूरी आवश्यकताओं के इलावा उपयोग करें, न अपने

धन को अधिक बढ़ाने की चेष्टा करे। यानि उद्योग धन्दों को वे मुनाफा कमाने के उद्देश्य से न चलायें, बल्कि समाज की ज़रूरतें पूरी करने के उद्देश्य से चलायें। यदि पैदावार के साधनों का उपयोग पूँजीपति के व्यक्तिगत हित के लिये न होकर समाज के हित के लिये होना चाहिए, तो इस सम्पत्ति को अपनी सम्पति बनाये रखकर ही पूँजीपति को क्या लाभ होगा? इस सम्पत्ति के समाज की सम्पत्ति बना दिये जाने में ही पूँजीपति को क्या हानि होगी? यह सम्पत्ति समाज के ही अधिकार में क्यों न रहे? इसमें हिंसा की बात क्या है? सम्पूर्ण समाज में सुव्यवस्था हो जाने से आज दिन पूँजीपति कहलाने वाली श्रेणी के प्रति क्या अन्याय होगा?

गाधीवाद के विचार से समाज में जो लोग सम्पत्ति के मालिक हैं, वे केवल उसके संरक्षक या 'ट्रस्टी' मात्र हैं। सम्पत्ति का उपयोग इन ट्रस्टियों को अपने स्वार्थ के लिये नहीं, समाज की भलाई के लिये ही करना चाहिए। यह उपदेश नया आविष्कार नहीं। यों तो ठाकुरशाही के ज़माने (सामन्त काल) में भी राजा सामन्त और ठाकुर प्रजा का सेवक माना जाता था, परन्तु वास्तव में वह स्वच्छन्दता पूर्वक प्रजा पर दमन और शासन करता था या जिस प्रकार गौ को माता कहकर हिन्दू लोग उसके दूध, सन्तान और चाम तक का प्रयोग कर लेते हैं, उसी प्रकार गाधीवाद सम्पत्तिशालियों को साधनहीन जनता का ट्रस्टी और सेवक बनाकर, साधनहीन जनता को दरिद्र नारायण का ख़िताब देकर संतुष्ट कर देना चाहता है। साधनहीन ग़रीब जनता के दरिद्र-नारायण कहलाने और सम्पत्ति के मालिकों के केवल 'ट्रस्टी' या सेवक कहलाने से समाज में उनकी स्थिति और शक्ति बदल नहीं जायगी। शोषण, अन्याय और अव्यवस्था के कारण समाज में उसी प्रकार बने रहेंगे और इस व्यवस्था का उद्देश्य, शोषण भी पूरा होता रहेगा।

सत्य, अहिंसा और त्याग के उपदेश और मालिक को रैयत का

सेवक कहना, बहुत पुरानी और घिसी हुई चाल है। अत्याचार को असह्य न बना देकर दया करते रहने के उपदेश शोषक और शासक श्रेणी को सदा से ही दिये जाते रहे हैं, ताकि उनका अत्याचार बग़ावत खड़ी कर उनके शासन का अन्त न करदे। गाधीवाद भी यही कर रहा है। यदि पूँजीपति और ज़मींदार समाज की सम्पत्ति के ट्रस्टी हैं और उद्देश्य जनता की भलाई है, तो अपने हितों के रक्षक चुनने और अपने हित के लिये व्यवस्था और नीति निश्चित करने का अधिकार जनता को होना चाहिए। समाजवादी यही चाहते हैं परन्तु गाधीवाद को यह बात मंज़ूर नहीं। सत्य, धर्म और अहिंसा का उपदेश जनता को दे गाधी-वाद समाज के रोगों का इलाज करना चाहता है। उसका कार्य-क्रम है कि मैशीन आदि के कारण परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होरहीहै। इन्हे छोड़कर उस युग में लौट चलो, जिस समय मनुष्य को पशु की तरह काम करना पड़ता था। ठाकुरशाही का स्थान विकास द्वारा ले लिया है पूँजीशाही ने। गाधीवाद आइन्दा के लिये विकास के मार्ग को रोक देना चाहता है ताकि पूँजीशाही का स्थान लेनेवाला समाजवाद न आ सके, पूँजीशाही का स्वत्व क़ायम रहे।

सन् १९३४ से गाधीवाद मुख्यतः सिद्धान्तों की लड़ाई लड़ रहा है। गाधीवाद की समर्थक पूँजीपति श्रेणी कांग्रेस में वैधानिक दाँव-पेंच और प्रचार द्वारा अपनी स्थिति बनाये रखने का यत्न कर रही है। जिस श्रेणी की कारिन्दागिरी गाधीवाद करता है, वह श्रेणी विदेशी सरकार के सहयोग से अपना अधिक-से-अधिक स्वार्थ पूरा करने में लगी हुई है और गाधीवाद उसके लिये नैतिक मोर्चाबन्दी कर रहा है। गाधीवाद अहिंसा के पर्दे मे पैदावार के साधनो पर वैयक्तिक अधिकार की रक्षा करना आवश्यक समझता है। जिस समय पैदावार के साधनों को मनुष्य व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करता था और उस पैदावार का उपयोग व्यक्ति के व्यवहार के लिये होता था

उस समय समाज में शान्ति के लिये पैदावार के साधनों पर व्यक्ति का अधिकार होना ज़रूरी था, ताकि व्यक्ति को उसके परिश्रमका पूरा फल मिल सके, उस पर हिंसा न हो। आज दिन समाज में पैदावार का कोई काम व्यक्ति अकेले नहीं करता। पैदावार के साधन इस अवस्था में पहुँच गये हैं कि सैकड़ों हज़ारों व्यक्ति उनमें एक साथ काम करते हैं। इन साधनों से होनेवाली पैदावार सैकड़ों हज़ारों व्यक्तियों के परिश्रम का परिणाम होती है परंतु यह परिणाम चला जाता है केवल एक पूँजीपति व्यक्ति के हाथ में। पैदावार का स्वाभाविक नियम यह होना चाहिये कि पैदावार करनेवाला ही उसका मालिक हो और उसका उपयोग कर सके। हमारे समाज में ऐसा नहीं होता, यही संकट का कारण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूँजीवादी अमल में पैदावार के साधनों में विकास हो गया है। पहले समय की तुलना में पैदावार के साधनों (औज़ारों) का रूप बदल गया है और पैदावार के काम में हाथ बँटाने के तरीक़े भी बदल गये हैं। पहले यह सब काम व्यक्तिगत रूप से होते थे, अब सामाजिक रूप से होने लगे हैं परन्तु पैदावार के साधनों पर मिल्कियत का तरीक़ा अभी तक नहीं बदला है। अब काम तो मिल-जुलकर सामाजिक रूप से होने लगे हैं, परन्तु पैदावार के साधनों पर मिल्कियत अब भी व्यक्ति की है। जनता पैदावार करती है और उसे पूँजीपति के हाथ में सौंपकर उसका मुँह ताकने लगती है। इस तरीक़े को बदलने की ज़रूरत है।

वास्तव में परिवर्तन तो हो गया है। मनुष्य के निर्वाह के साधन बदल गये, उन्हें व्यवहार में लाने का तरीक़ा बदल गया। इन्हें बदलने में पूजीवाद ने सहायता दी क्योंकि इससे उसे लाभ हो रहा था। जब इतना बदल गया तो उस व्यवस्था का बचा हुआ तरीक़ा—पैदावार के बँटवारे का ढंग—भी बदल जाना चाहिए। पूँजीवाद इसे बदलने नहीं देना चाहता क्योंकि ऐसा होने से पूँजीपति श्रेणी की प्रभुता चली

जायगी। संसार भर की मेहनत करनेवाली जनता चाहती है कि उनके परिश्रम से होनेवाली पैदावार पर उनका अधिकार हो। इसके विपरीत ससार भर की पूँजीपति श्रेणी प्रयत्न कर रही है कि यह अधिकार उन्हीं के हाथ मे रहे। पूँजीवाद और समाजवाद का संघर्ष इसी प्रश्न पर है।

पूँजीवाद और समाजवाद में चलनेवाला यह संसार व्यापी संघर्ष अनेक रूप में चल रहा है। अपनी प्रभुता को क़ायम रखने के लिये पूँजीवाद सभी प्रयत्न कर रहा है। कहीं पूँजीवाद को प्रजातंत्र का नाम देकर मज़दूरों की तानाशाही से बचने का प्रचार किया जाता है—जैसे कि इंगलैण्ड और अमेरिका में। कहीं पूँजीवाद नाज़ीज़्म और फैसिज़्म का रूप धारण कर समाजवादी परिवर्तन को राष्ट्रीयता विरोधी बता रहे हैं। भारतवर्ष में यह काम गाधीवाद कर रहा है।

समाजवाद के आदर्शों ने संसार भर मे जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाल दिया है। विषमता और शोषण को दूरकर समान अवसर लाने की भावना सभी ओर दिखाई देती है इसलिये पूँजीवाद समाजवाद के नाम का पर्दा ओढ़कर जनता को धोखा देने का यत्न भी ख़ूब करता है। जर्मनी का नाज़िज़्म (नेशनल-सोशलिज़्म=राष्ट्रीय-समाजवाद) यही कर रहा है, भारत में यही काम गाधीवाद कर रहा है। ठाकुरों के आधिपत्य को वह 'रामराज्य' या साम्यवाद बताता है। इस प्रकार के समाजवाद के लिये गांधीवाद हमें ठाकुरशाही की सभ्यता में ले जाना चाहता है। हमे वापिस लौटा ले चलने के लिये गाधीवाद समाज के विकास को नाशक सभ्यता बताता है। हमे यह देखना है कि विकास के मार्ग पर पीछे की ओर लौटने से क्या समाज सुखी और संतुष्ट हो सकेगा ?

मैशीन की सभ्यता

समाज मे अशान्ति, अव्यवस्था, श्रेणियों के संघर्ष और शोषण का कारण गाधीवाद की दृष्टि में मनुष्य स्वभाव के दुर्गुण, हिंसा, लोभ

आदि हैं। लोभ के कारण मनुष्य ने मैशीन बनाई। मैशीन की सभ्यता ने अत्याचार और शोषण फैला दिया। भारतवर्ष की सुख शान्ति का नाश गाधीवाद के विचार मे मैशीनों की चांडाल सभ्यता ने ही किया। म० गाधी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य'—जिसे वे अपना मुख्य एलान समझते हैं—पृष्ठ ९७ पर लिखते हैं, "हमारे बुज़ुर्ग बहुत समझदार थे। उन्होंने समझ लिया था, करोड़ों को तो ग़रीब ही रहना है—यह सोचकर हमारे पूर्वजों ने हमे भोगविलास से विमुख करने की कोशिश की। फलतः हज़ारों बरस पहले जो हल थे उन्हीं से काम चलाते रहे, हज़ारों बरस पहले जो झोंपड़े थे, उन्हीं को क़ायम रखा......सत्यानाशी प्रतियोगिता को हमने अपने पास फटकने नही दिया। यह नहीं था कि हम लोग यंत्रों की खोज और उन्हें बनाने की विद्या से अनजान थे; लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि यंत्रो के जंजाल मे फँसकर मनुष्य उनके ग़ुलाम ही बन जायँगे और अपनी नैतिकता छोड देंगे।" मतलब यह है कि भारतवासियों के पूर्वजों में यंत्र बनाने की योग्यता तो मौजूद थी परन्तु उन्होने जान बूझकर संघर्ष से बचने के लिये मैशीन की माया को दूर रखा। किस इतिहास के आधार पर यह बात कही गई, कहा नही जा सकता। इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। ईश्वर-प्रेरणा से यह बात कही गई हो तो इतिहास की खोज और तर्क के लिये वहाँ गुंजाइश नहीं। इतना स्पष्ट है कि वर्तमान युग मे मैशीनों से मनुष्य समाज को अपार लाभ हुआ है।

मैशीनो ने मनुष्य की बुद्धि को विकास का अवसर दिया। बुद्धि के विकास से मनुष्य पाप ही क्यों करे? वह नेकी भी कर सकता है। मैशीन ज्ञान स्वरूप सर्वशक्तिमान भगवान् की तरह मनुष्य के लिये अच्छी या बुरी व्यवस्था तैयार नही कर सकती। वह केवल साधन है। मनुष्य भलाई या बुराई जो कुछ करने का निश्चय करे, मैशीन उसमें सहायक हो सकती है। स्वयं गाधीवादी भी स्वीकार करते हैं कि "यंत्र निर्दोष

हैं।" यदि उन्हे समाज के लाभ के लिये उपयोग मे लाया जाय, वे बहुत लाभ पहुँचा सकते हैं, यदि उन्हे हानि पहुँचाने के लिये व्यवहार में लाया जायगा, तो हानि भी वे वैसी ही पहुँचायेंगे। प्रश्न यह है कि मैशीन किस की सम्पत्ति है? उसका उपयोग करने का अधिकार किसके हाथ में है? और मैशीन का प्रयोग करनेवाले के सामने उद्देश्य क्या है? समाज का लाभ; या समाज की हानि की परवाह न कर अपना लाभ?

समाज का इतिहास बताता है कि मैशीन के प्रभाव ने मनुष्य की शक्ति को बढ़ाकर उसे सुखी होने का अवसर दिया है। मैशीन मनुष्य को थोड़े परिश्रम से बहुत परिश्रम का फल दे सकती है। इसी प्रयोजन से मनुष्य ने मैशीन का आविष्कार और विकास किया है, अपना सर्वनाश करने के लिये नहीं। यह विश्वास कि मैशीन हिंसा का कारण है, मूर्खतापूर्ण है। हिंसा के लिये मैशीन ज़रूरी नहीं। दो हाथों से गला घोंटकर भी मनुष्य की हत्या की जा सकती है परन्तु इसके लिये मनुष्य के हाथ काट देना बुद्धिमानी नहीं समझी जायगी। यदि मनुष्य मैशीन से बिलकुल ही परहेज़ करता, तो आज भी वह बनों में वृक्षों के नीचे फल चुनचुनकर निर्वाह करता और फलों का मौसिम समाप्त हो जाने पर भगवान की प्रार्थना करके रह जाता। वास्तव मे मैशीन का विकास ही मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है।

गांधीवाद मैशीन का बिलकुल ही विरोध करता हो, सो बात नहीं। मैशीन के आरम्भिक रूप, चर्खे और बैलगाड़ी की वह पूजा करता है परन्तु मैशीन के विकसित रूप रेल, मोटर और मिल से उसे भय लगता है। इसका कारण स्पष्ट है। जब तक मैशीन व्यक्तिगत क्षेत्र की वस्तु रहे गांधीवाद को वह पसन्द है परन्तु जहाँ मैशीन सामाजिक क्षेत्र में पहुंची, उसने व्यक्तिवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था की नींव तैयार की, गांधीवाद को उससे भय लगने लगा।

गाधीवाद का कहना है कि समाज में हिंसा, शोषण और विषमता का कारण पैदावार का बड़े परिमाण में होना, सम्पत्ति का कुछ थोड़े से आदमियों के हाथ में जमा हो जाना और उद्योग धन्दो तथा कारोबार का केन्द्रीकरण हो जाना है। इस संकट की जिम्मेवारी वह मैशीन के सिर देता है। इस संकट से बचने का उपाय वह बताता है, मैशीन का बायकाट!

कुछ पूँजीपति मैशीनों की सहायता से बड़े परिमाण मे पैदावार कर साधनहीनों का शोषण करते हैं, इसलिये सम्पूर्ण समाज को मैशीनो द्वारा होनेवाले लाभ से वंचित कर दिया जाय, यह विचित्र दलील है। मैशीन के हट जाने से ही शोषण कैसे बन्द हो जायगा? मैशीन ही शोषण का साधन हो, सो बात भी नहीं। शोषण मैशीन से नही, व्यवस्था के सहारे होता है। जिस ज़माने में मैशीन न थी, ग़ुलामी की प्रथा द्वारा मनुष्य का शोषण होता था। आज भी इस देश मे ज़मींदारी और साहूकारे की प्रथा द्वारा किसानों का जैसा भयंकर शोषण हो रहा है, वह संसार के भयंकर से भयंकर शोषण का मुकाबिला कर सकता है परन्तु उस शोषण मे मैशीन का व्यवहार नहीं होता।

गाधीवाद को शिक़ायत है कि मैशीन की सहायता से कई आदमियों की मेहनत का काम एक ही आदमी बहुत थोड़े समय मे कर सकता है, इसलिये मैशीन की पैदावार बड़े परिमाण में और केन्द्रित होकर होती है और मैशीन अनेक मनुष्यों को बेकार कर देती है। इस तर्क का अर्थ यह होता है कि समाज को लाभ पहुँचा सकने के जितने गुण हैं, उन सबसे मनुष्य समाज को हानि पहुच रही है। यह बात ठीक है कि मौजूदा समाज में पैदावार अधिकतर मैशीन से होती है और समाज में बेकारी और संकट भी ज़रूर है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि इस बेकारी और संकट का कारण मैशीन है।

समाज के लिये पैदावार ज़रूरी है। यदि पैदावार अधिक हो सकती

है और बिना कठिनाई के हो सकती है, तो इससे संकट क्यों आये? संकट आने का कारण कुछ और ही है। कारण यह है कि मैशीन की सामाजिक शक्ति को समाज के काम नहीं आने दिया जाता। पहिली बात यह है कि मैशीन व्यक्ति की शक्ति से चल सकती है। दूसरी बात यह है कि मैशीन एक व्यक्ति की आवश्यकता से बहुत अधिक पैदा कर देती है। जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है वह दोनो ही तरह व्यक्ति की सीमा से बाहर है। ऐसी अवस्था में जब उसे व्यक्ति से बाँधने की कोशिश की जायगी, संकट आयेगा ही।

समाज और मैशीन के सम्बन्ध में परिस्थिति बदल जाती है, मैशीन को समाज की शक्ति ही चलाती है। मैशीन की पैदावार को खर्च भी समाज ही करता है और मैशीन की पैदावार चाहे जिस सीमा तक बढ़ जाय, समाज उसे खपा सकता है। संकट तभी आता है जब समाज मैशीन को चलाने में शक्ति लगाने के बाद उसका फल नहीं पा सकता। इससे समाज की शक्ति के खर्च और शक्ति प्राप्त करने के पलड़े बराबर नहीं हो पाते। पैदावार के साधनों और समाज के बीच अटक जाने-वाली पूँजीपति श्रेणी ही समाज के काम में अड़चन डालती है परन्तु गांधीवाद कहता है, इस अड़चन को हटाना हिंसा है।

यदि मैशीन व्यक्ति के अधिकार से निकलकर समाज के अधिकार में हो जाय तो मैशीन का कम परिश्रम से अधिक पैदावार करने का गुण संकट का कारण न होकर सुख का कारण बन जायगा। उस समय मैशीन की सहायता से अधिक काम कर सकने का अर्थ दूसरे आदमियों का बेकार होना नहीं होगा बल्कि एक आदमी का बारह घण्टे काम न कर केवल चार घण्टे काम करना होगा। उस समय एक आदमी से कई आदमियों का काम कराकर और उसे बहुत कम मज़दूरी देकर पूंजीपति के लिये मुनाफ़ा कमाना मैशीन का प्रयोजन न होगा, प्रयोजन होगा सब आदमियों के लिये काम को सहल बना देना।

बेकारी का भय ऐसी अवस्था में हो ही नहीं सकता क्योंकि पैदावार केवल खुशहाल पूँजीपतियों और मध्यम श्रेणी के लोगों के लिये नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिये करनी होगी। बेकार रहने का अवसर किसी को न मिलेगा—"करोड़ों आदमियों को तो ग़रीब ही रहना है" गाधीवाद का यह फैसला समाजवाद को मंजूर नहीं। समाजवाद का आदर्श है, जहाँ तक हो सके समाज के सभी लोगों की सभी आवश्यकतायें पूरी होनी चाहिए, अर्थात् सभी लोगों को अमीर होना चाहिए।

यह विचार कि मैशीन के कारण पैदावार में समय कम ख़र्च होने से फालतू समय में आदमी अधिक पाप करता है, एक ग़लत-फहमी है। चोरी, डकैती, व्यभिचार इनमें से कौन पाप ऐसा है जो मैशीन का उपयोग होने से पहले न होता था और अब होने लगा? यदि मैशीन की सहायता से मनुष्य को ज़िन्दगी की ज़रूरी चीज़ें आसानी से प्राप्त करने के बाद कुछ समय मिलता है, तो यही समय उसके लिये अपने मनुष्यत्व को अनुभव करने का है। इस समय में मनुष्य स्वाध्याय कर सकता है, चाहे तो आध्यात्म का चिन्तन कर सकता है या अपने ज्ञान को बढ़ाने तथा जीवन में स्फूर्ति देनेवाले विनोद में ख़र्च कर सकता है; लेकिन गाधीवाद को यह मंजूर नहीं। सेवकों के मालिक बन जाने से यदि समाज ख़ुशहाल बन सकता है, तो यह उसे मंजूर नहीं; क्योंकि यह भगवान की बनाई व्यवस्था और 'राम राज्य' के विरुद्ध है।

गाधीवाद समानता की बात सोचता भी है तो पैदावार के साधनों को घटाकर, सब को ग़रीब और कगाल बना देने के तरीक़े से। समाजवाद को समाज की हत्या का यह तरीक़ा मंजूर नहीं। वह समाज की शक्ति घटा देने के लिये तैयार नहीं। कंगाली मिटाकर वह सबको सुखी बनाना चाहता है। गाधीवाद का मंशा तो स्पष्ट है। चाहे सम्पूर्ण समाज कंगाल हो जाय, कंगालों को अमीर नहीं बनने दिया जा सकता—"करोड़ों को तो ग़रीब ही रहना है"। मतलब यह है कि

पड़ोसी का असगुन ज़रूर हो जाय उसके लिये चाहे अपनी ही नाक क्यों न कटानी पड़े।

यह विचार कि मैशीन का उपयोग मनुष्य के शरीर को दुर्बल बना देता है, अनुभव से ठीक नहीं जान पड़ता। भारत की अपेक्षा योरुप में मैशीन का उपयोग कहीं अधिक है। योरुप के लोगों की शारीरिक अवस्था भारत से कहीं अधिक अच्छी है। योरुप तथा अमेरिका के लोगों के स्वास्थ्य तथा आयु का हिसाब देखने से जान पड़ता है कि वहाँ दोनों में उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। यह कहकर अपने आपको धोखा देना कि योरुप के लोग व्यभिचारी हैं और भारत के तपस्वी और ब्रह्मचारी, "हिन्दुस्तान को किसी से कुछ सीखने की ज़रूरत नहीं", * इस देश के लोगों को अन्धा बनाकर नाश के गढ़े में ढकेलना है। भारत की तपस्या और सदाचार जो उसे मनुष्य के रूप में दुर्बल, निकृष्ट और शक्तिहीन बनाती है, हमारे किस काम आयेगी? पश्चिम से आनेवाले विचारों और विज्ञान के विकास से भारत की जनता को अंधा रख, यहाँ की ठाकुर श्रेणी के अधिकारों की रक्षा का प्रयत्न करना जनता के प्रति दग़ाबाजी और विश्वासघात है।

गांधीवाद का यह दावा कि, मैशीनों का व्यवहार छोड़ देने से समाजवाद का आदर्श पूरा हो जायगा, ठीक नहीं। गांधीवाद के उपदेश से समाज मैशीन का व्यवहार छोड़ देगा या नहीं, इस बात का चर्चा करने की ज़रूरत नहीं। बीस वर्ष से गांधीवाद मैशीनों का विरोध कर रहा है परन्तु मैशीनों का प्रचार घटा नहीं, बढ़ ही रहा है। फ़र्ज़ कर लिया जाय कि समाज मैशीन का उपयोग छोड़ देगा इससे समाजवाद कैसे आ जायगा? मैशीन को छोड़ देने का अर्थ होगा कि उद्योग धन्दों को व्यक्ति अकेले-अकेले करेंगे। इसे सामाजिक ढंग न कहकर वैयक्तिक ढंग कहना होगा।

---

* "हिन्द स्वराज्य" महात्मा गांधी, पृष्ठ ६६।

गाधीवादी विद्वान समाजवाद और साम्यवाद को एक ही चीज़ समझते हैं। समाजवाद को साम्यवाद कहना भूल है। समाजवाद का अर्थ है मनुष्य के जीवन का सामाजिक या सामूहिक तरीक़ा। समाजवाद उन सब उपायों की उन्नति करना चाहता है जिनसे मनुष्य सामाजिक और सामूहिक ढंग से काम करें। मैशीन एक ऐसा ही उपाय है। सब कामों को सामाजिक ढंग से, सामाजिक हानि लाभ के विचार से करने से समानता-साम्यवाद हो जायगी, यह बात ठीक है परन्तु समाजवाद ज़बरदस्ती समानता लाने मे या सबको ग़रीब बना देने में विश्वास नहीं करता। समाजवाद का कार्य-क्रम गाधीवाद से ठीक उलटा है, अर्थात् मैशीनों का अधिक-से-अधिक विकास और प्रचार हो, समाज की पैदावार करने की शक्ति बढ़े, समाज सभी मनुष्यों की आवश्यकता पूरी करने योग्य हो। समाजवाद जितनी सम्पत्ति समाज के लिये पैदा करना चाहता है, व्यक्तिगत ढंग से उतनी पैदावार हो ही नहीं सकती। समाज में पैदावार के सामूहिक रूप लेने से ही पैदावार और बंटवारे के साधनों का सामाजिक ढंग हो सकता है न कि मैशीन का बायकाट कर उसे घरेलू धन्धे का व्यक्तिगत संकुचित रूप दे देने से।

पूँजीवाद में मैशीनो का जितना अधिक उपयोग होगा, शोषितों की संख्या उतनी ही अधिक बढेगी। उनके सगठित होकर सबल होने का अवसर आयगा। यही लोग समाजवाद की शक्ति हैं। इसके विपरीत गाधीवाद मैशीन के बायकाट का उपदेश देकर, जनता को संकट दूर करने के लिये वैयक्तिक ढंग से काम करने के भवँर में डाल उन्हे बिखेरकर निश्क्रिय बना देना चाहता है। गाधीवाद कहता है, मैशीनों पर सामाजिक अधिकार क़ायम करने की बात छोड़कर अपनी आवश्यकताओं को व्यक्तिगत रूप से पूरा करो। यह बात स्पष्ट है कि मैशीन के मुक़ाबिले मे व्यक्ति के हाथ की पैदावार के लिये कोई स्थान नही। यदि व्यक्ति चाहे तब भी वह हाथ की पैदावार से अपनी सब

आवश्यकताओ को पूरा नही कर सकेगा। जिस कंगाली से बचने के लिये मेहनत करनेवाली जनता मैशीन मालिकों के शोषण से छूटना चाहती है, हाथ की पैदावार उसे उससे भी अधिक दुरावस्था और ग़रीबी मे फँसा देगी।

यदि वास्तव मे ही मैशीनरी का उपयोग समाज से हट जाय तो कितने ही रोज़गार बन्द हो जायँगे और समाज में बेरोज़गारी बेहद बढ़ जायगी। खेती की पैदावार के अतिरिक्त जीवन का कोई और सहारा न रहेगा। भूमि पर फ़िलहाल ही इतना बोझ है कि वह देश की जनता का पालन करने में असमर्थ है। गाधीवाद के ग्रामोद्योग के कार्य-क्रम तथा मैशीन के बहिष्कार द्वारा शोषण को रोकने के उपदेशों का फल केवल यह हो सकता है कि जनता उत्पत्ति के साधनों को समाज की सम्पत्ति बनाने के मार्ग से हटकर, जो कि विकास का स्वाभाविक मार्ग है, अपनी आवश्यकताओं को घटाने, और दरिद्रता को सहने के अभ्यास करे। मनुष्य समाज या साधनहीन ग़रीब जनता का इससे कोई उपकार न होगा। ग़रीब किसान, मज़दूरों की तरह रहने से उनके हृदय मे हम अपने प्रति श्रद्धा-भक्ति बेशक पैदा कर लेंगे परन्तु इससे किसान मज़दूरो को कुछ सहायता न मिलेगी, न उनकी आर्थिक अवस्था सुधरेगी, न वे अपनी उन्नति की-बात सोचेंगे। हाँ, पूँजीपति और ठाकुर लोगों की श्रेणी को इससे अवश्य लाभ होगा। जनता उनकी श्रेणी के हाथ से सम्पत्ति की मिल्कीयत ले लेने का विचार छोड़, भाग्य के भरोसे बैठ जायगी। मृत्यु के मार्ग से ईश्वर का साक्षात्कार करनेवाली गाधीवाद की मृत्युधर्मी नीति का परिणाम और क्या हो सकता है?

गांधीवादी रचनात्मक कार्य-क्रम

गाधीवादी राजनीतिज्ञों का यह दावा है कि युद्ध काल (आदोलन चलने के समय) में गाधीवादी नीति सत्याग्रह और असहयोग के मार्ग से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ती है। शान्ति काल (आन्दोलन रुका रहने की अवस्था) में यह नीति रचनात्मक-कार्यक्रम द्वारा देश की जनता की आर्थिक अवस्था सुधारने और उसे स्वतंत्रता की लडाई लडने योग्य बनाती है। रचनात्मक-कार्यक्रम का अर्थ है चर्खा, राष्ट्रीय शिक्षा और साम्प्रदायिक एकता। गांधीवादी नीति के उग्र राजनैतिक आन्दोलन की सफलता इस रचनात्मक कार्य-क्रम की बुनियाद पर टिकी है, इसलिये इस कार्य-क्रम की नीति को समझना भी ज़रूरी है।

खद्दर

"Charkha to bring peace to world"

Mahatma Gandhi.

मैशीन की पैदावार पर क़ायम सभ्यता के विरुद्ध हाथ की दस्तकारी और घरेलू धन्दों से निर्वाह करनेवाली सभ्यता का प्रतिनिधि गाधीवाद चर्खे को समझता है। चर्खे को भारत के राष्ट्रीय झण्डे पर चिपका देने का अर्थ यही है कि काग्रेस की गाधीवादी नीति भारत को बिना मैशीन के युग में लौटा ले जाना चाहती है। गाधीवाद के मैशीनों का बायकाट कर ग़रीबों का शोषण दूर करने के प्रोग्राम में खद्दर का मुख्य स्थान समझा जाता है।

महात्मा गाधी चर्खे को आध्यात्मिक अस्त्र मानते हैं और चर्खा कातना आत्मिक बल बढ़ाने का उपाय बताते हैं। उनका कहना है, चर्खा कातने से भारत की ग़रीब, निर्बल प्रजा बलवान और आत्म निर्भर

बन जायगी। चर्खे से आत्मिक बल कितना बढ़ता है, इस विषय पर विचार करना लाभदायक न होगा क्योंकि आत्मिक बल बढ़ाने के दूसरे नुसख़े भी हैं जिन पर हम विचार नहीं कर सकते। उदाहरणतः धूप मे एक टाँग से खड़े होकर तपस्या करना, जेठ की दुपहरिया मे धूनी तापना, सूलों पर लेट रहना या सुलफे का दम लगा लेना। आत्मिक बल की बात छोडकर हम चर्खे को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखेंगे, कहाँ तक वह देश की कपड़े की आवश्यकता को पूर्ण कर सकता है, बेरोज़गारी दूर कर सकता है, उससे जनता के जीवन की परिस्थितियों में सुधार हो सकता है।

इस बात में तो सन्देह और बहस की गुंजाइश नहीं कि मिलों से सूत कातने और कपडा तैयार करने की अपेक्षा चर्खे से सूत कातने और करघे से कपड़ा बुनने मे कई गुना अधिक मेहनत लगती है। जितनी मेहनत से मिल मे बीस गज़ कपडा आसानी से बुना जा सकता है, करघे पर उतनी मेहनत से कठिनाई से एक गज़ कपड़ा बुना जाता है। यदि समाज मिल को छोडकर चर्खे का व्यवहार करे, तो प्रति एक गज़ कपडा बुनने में उन्नीस गज़ की बुनाई व्यर्थ नष्ट होती है। खरीदनेवाले को मिल के कपड़े की अपेक्षा खद्दर कही मँहगा मिलता है। दलील दी जाती है, खद्दर व्यक्तिगत रूप से मँहगा मिलने पर भी राष्ट्रीय रूप से लाभदायक है। *हम भी प्रश्न* को राष्ट्रीय रूप से ही देखना चाहते हैं। राष्ट्रीय रूप से यह मूर्खता होगी कि बीस गज़ कपडा बुनने लायक परिश्रम से केवल एक गज़ कपडा बुना जाय। खद्दर का एक गज़ कपडा बुनने में उन्नीस गज़ बुनाई का परिश्रम व्यर्थ नष्ट होता है, उस परिश्रम से देश के नंगे रहनेवालो के लिये अधिक कपडा क्यों न बुना जाय, या दूसरे आवश्यक पदार्थ उन लोगो के लिये क्यो न तैयार किये जायँ जो कपडा बुनने का काम करते हैं?

सामाजिक दृष्टिकोण से चर्खे से सूत कातनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा

मैशीन से सूत कातनेवाला व्यक्ति कहीं अधिक सामाजिक सेवा करता है। चर्खे की कताई की मज़दूरी को यदि भावुकता और दया की भावना से अलग करके देखा जाय तो उसका बाज़ार मूल्य किसी भी हालत मे दो या तीन आने प्रतिदिन से अधिक नहीं हो सकता। मैशीन पर सूत कातने वाला व्यक्ति चर्खे की अपेक्षा लगभग २३० गुणा अधिक सूत कातता है और मज़दूरी पाँच छः गुणा अधिक लेता है। अपेक्षाकृत कम मेहनत से तैयार होने के कारण मैशीन के सूत का दाम बाज़ार मे कम होगा। ग़रीब की भी रसाई इस सूत के बने कपड़े तक हो सकेगी। चर्खे से कते सूत के कपड़े केवल अधिक पैसे की हैसियत के लोगों के लिये ही होंगे। यह बात कल्पना के आधार पर नहीं कही जा रही प्रतिदिन के व्यवहार में हम इस सत्य को देखते हैं।

गांधी आश्रमों और खद्दर भन्डारो के बारे में यह सचाई किसी से छिपी नहीं कि उनके ग्राहक केवल अमीर श्रेणी के लोग हैं। इन खद्दर भण्डारो की बिक्री की जाँच करने पर यह भी मालूम हुआ है कि आश्रमों की बिक्री में सस्ते खद्दर का अंश बहुत कम होता है। अधिक बिक्री होती है, मँहगे किस्म के कपडो की, या रेशमी माल की, जिसे कीमत की परवाह न करनेवाले शौक़ीन लोग ही खरीदते हैं। चर्खे से सूत कातने वाले मज़दूर की अपेक्षा मैशीन से सूत कातने वाले मज़दूर की आमदनी अधिक होने से वह अपने बनाये हुए कपड़े को अधिक मात्रा में खरीद सकता है। इसके इलावा वह बाज़ार से अधिक सौदा खरीद सकने के कारण दूसरे रोज़गारों के लिये गुंजाइश पैदा करने में सहायक होता है। चर्खे से सूत कातनेवाला व्यक्ति मज़दूरी कम पाने और दूसरे रोज़गारों की पैदावार खरीद सकने में असमर्थ होने के कारण, देश के व्यापार में सहायक नहीं हो सकता।

खद्दर आदोलन ने ग़रीब ग्राहक के लिये कोई सहूलियत नहीं की। गांधीवादी नीति का यह दावा है कि और कुछ लाभ खद्दर से चाहे

न हो, परन्तु इससे अनेक ग़रीबों की जेब में थोडा बहुत पैसा पहुचने में मदद ज़रूर मिलती है। यह बात ठीक है कि खद्दर के बहाने कुछ ग़रीब आदमियों की जेब में थोडा बहुत पैसा पहुँचता है परन्तु जिस ढग से यह पैसा ग़रीब आदमी की जेब में पहुँचता है, आर्थिक दृष्टि से उसके अपने कोई पैर नहीं ; वह केवल भावुकता और भीख है। खद्दर खरीदनेवाला व्यक्ति प्रति गज़ कपड़ा खरीदते समय कुछ पैसे -) या =) अधिक देता है, जिसका कि मूल्य उसे कपड़े के रूप में नहीं मिलता। यह पैसा केवल गाधीआश्रम की मोहर के कारण देना पडता है। इसे दान के सिवा और क्या कहा जायगा ? या इसे राष्ट्रीयता की भावना रखने का जुर्माना समझा जा सकता है। खद्दर की पैदावार से जीवन बितानेवाले कारीगर या प्रबन्धक जनता की राष्ट्रीय भावुकता पर जीवित रहते हैं। इन्हे हम काग्रेसी अनाथालय के सिवा और कुछ नही समझ सकते। पूरी मेहनत करने के बावजूद इनके कार्य का जो मूल्य इन्हे दिया जाता है, वह बाज़ार में उस कार्य के लिये मिलनेवाले मूल्य से कहीं अधिक है। इसका स्पष्ट प्रमाण तो यह है कि आज बीस वर्ष तक खद्दर का महात्म्य गाने के बाद भी खद्दर का व्यवहार अपनी आर्थिक उपयोगिता के कारण नहीं हो रहा बल्कि गाधीवादी काग्रेस की सिफारिश से ही हो रहा है। यदि काग्रेस आज खद्दर पर ज़ोर देना छोड दे, तो महीने भर में खद्दर भण्डार लोप हो जाय। यह भेद किसी से छिपा नहीं कि वर्ष भर में उतना खद्दर नहीं बिक पाता, जितना गांधी जयन्ती के अवसर पर हुण्डियों की शक्ल में जनता के गले मढ़ दिया जाता है। खद्दर अमीर लोगों के लिये देश भक्ति का चोला, साधारण श्रेणी के लिये देश भक्ति का जुर्माना, और खद्दर पैदा करनेवालों के लिये महात्मा गाधी के भिक्षा पात्र में मिलनेवाला दान मात्र है। क्योंकि वे समाज को जितने दाम की वस्तु देते हैं, उससे अधिक मूल्य वे पाते हैं।

खद्दर पैदा करनेवाला व्यक्ति कभी स्वाभिमान से यह दावा नहीं कर सकता कि कांग्रेस और गांधीवाद की सिफ़ारिश के बिना वह अपनी मेहनत से अपना पेट भर सकता है।

खादी के अव्यवहारिक होने का सुबूत आचार्य कृपलानी ने स्वयं दिया है। खद्दर का मूल्य बढ़ा देने के विषय मे महात्मा गांधी के क्रान्तिकारी कार्य-क्रम का बयान करते हुए वे कहते हैं। महात्मा गांधी ने.........""कार्यकर्ताओं और संगठनकर्ताओं द्वारा पेश किये गये आकड़ों के आधार पर मिली हुई विशिष्ट सलाह के विरुद्ध जाकर ऐसा किया है *।" महात्मा गांधी की यह तारीफ़ इसलिये की गई कि खद्दर कातने और बुननेवालों की मज़दूरी बढ़ाने के लिये उन्होंने अपने हुकुम से खद्दर की कीमत बढ़ा दी। व्यापारिक आंकड़ों के विरुद्ध चलना किसी दूसरे व्यक्ति के लिये मूर्खता समझी जाती परन्तु महात्मा गांधी के लिये यह तारीफ़ की बात है। कृपलानी साहब कहते हैं "*नये प्रयोगों के कारण खादी को ज़्यादा हानि नहीं पहुँची है*।" हानि यदि अधिक नहीं पहुँची है, तो कुछ तो ज़रूर पहुँची है और वह इस बात का प्रमाण है कि औद्योगिक रूप से खादी मज़दूर का पालन करने में असमर्थ है।

खादी के समर्थन के लिये गांधीवादी उसकी आध्यात्मिक खूबियों के अतिरिक्त यह तारीफ़ करते हैं कि इससे देश के साधन हीन ग़रीबों के लिये नया रोजगार पैदा होगया है और ग्रामोद्योग और हाथ की दस्तकारी के प्रतिनिधि स्वरूप खादी समाज से शोषण और आर्थिक असमानता को दूर करने के साधन स्वरूप है। साधनहीनों के लिये कारोबार के तौर पर खादी की असफलता देख चुकने के बाद समाज में आर्थिक शोषण और असमानता दूर करने में उसकी उपयोगिता को जाँचना भी ज़रूरी है।

---

* गांधीवाद समाजवाद पृष्ठ ८८।

शोषण का कारण है, पैदावार करने के साधनों पर मेहनत करनेवाली श्रेणी का अधिकार न होना। इस विषय में खद्दर क्या कर सकता है? कुछ व्यक्ति जो खद्दर के पेशे मे लगे हुए हैं, यदि उन्हे शोषण से बरी समझ लिया जाय तो भी उन्हे संतुष्ट अवस्था मे नहीं समझा जा सकता। दो-तीन आना रोज़ कमानेवाले यह लोग मिलो में शोषित होनेवाले मज़दूरो की अपेक्षा भी गई बीती हालत में रहते हैं। शोषण का विरोध किया जाता है, मेहनत करनेवालो की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये। खद्दर पैदा करनेवाले बिना शोषण के ही मुसीबत भोगते हैं, शोषण का विरोध वे किस लिये करेंगे। इलावा इसके खद्दर से निर्वाह करनेवालो की संख्या है ही कितनी, जो वे समाज की शोषण की व्यवस्था पर कोई प्रभाव डाल सकें?

मिलो में होनेवाली पैदावार से शोषण होता है परन्तु खद्दर का प्रभाव मिलो द्वारा होनेवाले शोषण पर बिलकुल नहीं पडता। इस विषय में महात्मा गाधी स्पष्ट कह चुके हैं कि खद्दर का उद्देश्य मिलों का मुकाबिला करना नही है †। खद्दर यदि ऐसा करता तो उसके प्रचार में मिल मालिकों से सहायता क्योंकर मिलती?

अलबत्ता खद्दर जैसे निश्फल उपाय द्वारा शोषण की व्यवस्था को दूर करने का भ्रम शोषण की व्यवस्था को पैर जमाये रहने का अच्छा अवसर देता है। शोषण को दूर करने का सीधा उपाय तो यह है मेहनत करनेवाली श्रेणी का अधिकार पैदावार के साधनों पर हो। मेहनत करनेवाले जब पैदावार के साधनो के मालिक होंगे, तब कोई दूसरा उनके परिश्रम को हथिया नहीं सकेगा। यह मार्ग है श्रेणियों के संघर्ष का, शोषण करनेवाली श्रेणी के हाथ से शोषण की शक्ति लेकर उन्हे शोषक न रहने देना। खद्दर श्रेणी-संघर्ष के सही रास्ते को अनुचित बताकर शोषितों को यह विश्वास दिलाता है कि

† "गाधी विचार दोहन" पृष्ठ १३३।

वे स्वयं अपने हाथ से पैदावार करें तो उनका शोषण हो ही नहीं सकेगा, श्रेणी संघर्ष द्वारा हिंसा की आवश्यकता क्या ?

खद्दर के जन्मदाता और शोषक मिल मालिक इस सचाई को भली भाँति समझते हैं कि खद्दर मैशीनों की पैदावार से चलनेवाली शोषण की व्यवस्था का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। खद्दर इतना अवश्य कर सकता है, कि शोषण की व्यवस्था के कारण बेरोज़गार हो जानेवाली जनता को शक्ति प्राप्त करने के मार्ग से हटाकर चुप-चाप मुसीबत सहने के मार्ग की ओर ले जाय।

चर्खा जिसकी शक्ति मैशीन से सैकड़ों गुना कम है, कभी मैशीन को निर्मूल नहीं कर सकता। यदि चर्खे में या हाथ के उद्योग धन्दों में मैशीन का मुकाबिला करने की शक्ति होती, तो मैशीन के पैर क्योंकर जम सकते। जिस समय मैशीन का जन्म हुआ, हाथ के उद्योग धन्दों का पूरा साम्राज्य क़ायम था। हाथ के उद्योग धन्दों की स्वाभाविक निर्बलता के कारण ही उनकी मैशीन के आगे पराजय हुई।

खद्दर यदि देश के कपडे की माँग को किसी भी हद तक पूरा कर सकता तो निश्चय ही वह कपड़े की मिलों के मुनाफ़े का हिस्सा छीनने लगता और कपड़े की मिलों के व्योपारी खद्दर के प्रचार में अपना प्रतिद्वन्दी देख पाते। लेकिन चतुर पूजीपति खूब जानते हैं कि खद्दर से ऐसे भय की आशा नहीं। स्वयम् महात्मा गांधी ने भी इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि चर्खा मिलो का स्थान नहीं ले सकता बल्कि गाधीवाद यह चाहता भी नहीं कि चर्खा मिलों का स्थान ले ले *। इस बात को और भी स्पष्ट कर देने के लिये गांधीवादियों को आज्ञा है कि—"खादी और मिलों में स्पर्द्धा न होने देनी चाहिए और यदि ठीक हिसाब लगाया जाय तो वह है भी नहीं ×।" जब खद्दर तैयार

* गाधी विचार दोहन पृ० १३२। × गाधी विचार दोहन पृ० १३३।

करने मे साधारण कपड़े की अपेक्षा वीस गुना खर्च की गई मेहनत कोई फरक मिलो की लूट के मैदान में नहीं डाल सकती, तो, खद्दर है किस मर्ज़ की दवा ?

खद्दर किस मर्ज़ की दवा है, इस बात को समझने के लिये यह उपाय है कि देखा जाय, कौन लोग खद्दर के विशेष समर्थक हैं। खद्दर कार्यकर्ता दावे से कहते हैं कि खद्दर कोई व्यापारिक काम नहीं। वह केवल परोपकार का काम है। परोपकार का यह काम चलता है, पूँजी-पतियो के दान से। मिलो से मुनाफा कमाना ही जिन पूँजीपतियों की ज़िन्दगी का उद्देश्य है, वे खद्दर प्रचार के लिये रुपया दें, तो इसका भी कारण है। यदि इन मिल मालिको का विश्वास है कि खद्दर से वास्तव में देश की भलाई है, तो इन्हें अपनी मिलें कभी की बन्द कर देनी चाहिए थीं, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। होता यह है कि पूँजीपति मिलों से लाभ उठाते हुए ग्रामोद्योग से सहानुभूति प्रकट कर उसके प्रचार के लिये सहायता देने को तैयार रहते हैं।

इस प्रकार के प्रचार में उनका लाभ है। बात यह है कि मिलों से पैदावार कर पूँजीपति मुनाफ़े की रकमें समेटते हैं और मैशीनों की सहायता से बहुत आदमियों का काम कम आदमियो से कराकर मज़-दूरों या मेहनत करनेवालो की बडी सख्या को वेकार बना देते हैं। इस वेकार जनता के मौजूद रहने के कारण पूँजीपति मज़दूरी के दर को खूब नीचा रख सकते हैं। काम पर लगे मज़दूरो को सदा धमकी दी जाती है कि यदि तुम असतुष्ट हो तो तुम्हारी जगह हमें दूसरे मज़दूर मिल सकते हैं। इस प्रकार साधारण अवस्था में वेकार मज़दूर और नौकर काम पर लगे मज़दूरो और नौकरो का वेकारी के भय से दबाये रहते हैं।

मज़दूरो और नौकरी पेशा लोगों मे जागृति पैदा हो जाने पर यह अवस्था बदल जाती है। मेहनत करनेवाली जनता यह समझ जाती है

कि वह एक श्रेणी है और उनके हित की रक्षा संगठित श्रेणी के रूप में अपनी शक्ति बढ़ाकर पैदावार के साधनों पर अधिकार करने से ही हो सकती है। ऐसी अवस्था में काम पर लगे मज़दूर और बेकार मज़दूर एक हो जाते हैं। उस समय मज़दूर श्रेणी का बेकार रहनेवाला अंग पूँजीवाद का घोर शत्रु बन जाता है। इन लोगों के लिये ज़िन्दा रहने का एक ही उपाय रहता है कि वे समाज की व्यवस्था में परिवर्तन कर ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें उनके लिये भी जीवित रहने का मौक़ा रहे। अर्थात् पैदावार के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो।

पूँजीवादी प्रणाली के कारण को जीवित रहने के लिये अवसर न पाकर जो लोग बेकार हो जाते हैं और जिन्हें पूरी मेहनत करने के बावजूद भूखे नंगे रहना पड़ता है, वे ही लोग क्रान्ति के अगुआ होते हैं। ख़ासकर बेकार- रहनेवाले लोग यदि पूँजीवादी प्रणाली की वास्तविकता समझ जायँ और संगठित हो, तो कोई शक्ति उन्हें परिवर्तन से रोक नहीं सकती। परिवर्तन या क्रान्ति से लोग इसलिये डरते हैं, कि उसमें उन्हें संकटों का भय रहता है। परन्तु भूख से तड़पते लोग किस संकट से डरेंगे ? इस प्रकार के लोगों की संख्या भारतवर्ष में तेज़ी से बढ़ रही है। संगठित होने पर यही लोग परिवर्तन करेंगे। इस भय को पूँजीपति ख़ूब समझते हैं और गाधीवाद की शरण ले, ग्रामोद्योग और खद्दर का ढोंग रचकर वे साधनहीन श्रेणी को यह बहकाने की चेष्टा करते रहते हैं कि क्रान्ति के भयानक मार्ग पर जाने की उन्हें आवश्यकता नहीं। उसमें हिंसा है, उन्हें ग्रामोद्योग और चर्खे के आध्यात्मिक और अहिंसात्मक उपाय द्वारा अपनी ज़रूरतें कम कर संतोष से जीवन निर्वाह करना चाहिये। उनके इस मतलब को गांधीवाद पूरा करता है ; क्योंकि गाधीवाद ठाकुरशाही के उस ज़माने की सत्य, अहिंसा और नैतिकता का प्रचार करता है जिसका

अभिप्राय ठाकुरो और मालिको की कृपा से सुखी रहना और उनके अधिकार की रक्षा करना था।

गाधीवाद मनुष्य समाज को मैशीन द्वारा लाभ उठाने की आज्ञा उसी समय देना चाहता है जब पूँजीपति गाधीवाद के अहिंसा के उपदेश को मानकर मैशीन द्वारा शोषण करना छोड़ दे। गाधीवाद पूँजीपतियो को शोषण न करने का उपदेश तो देता है परन्तु उन्हें मालिक बनाये रखकर शोषण का अधिकार उनके हाथ में ज़रूर रखना चाहता है। शोषण की सम्भावना ही समाज में न रहे, ऐसी व्यवस्था लाना गाधीवाद को मज़ूर नहीं क्योकि इससे ठाकुरों को दया दिखाने का अवसर नहीं होगा उनकी मिल्कीयत क़ायम नहीं होगी। उसका आदर्श है, सामन्तवाद के आदर्श के अनुकूल मालिक शोषण के अधिकार को रखें, परन्तु दान दया भी करते जायँ। साधनहीन ग़रीब प्रजा सुखी रेहे, परन्तु पूँजीपति और ज़मींदार ठाकुरो की दया से, यही 'राम राज्य' है।

मैशीन के विकास से शनैः-शनैः ऐसी अवस्था आ रही है कि साधनहीन श्रेणी की संख्या बढ़ रही है, उनकी अवस्था उनमें असंतोष और पैदा कर जागृति पैदा कर रही है, वे संगठित हो अपनी शक्ति पहचान रहे हैं। यह सब परिस्थितियाँ पूँजीपति और ठाकुर श्रेणी को समाज पर अधिकार क़ायम रखने के लिये निर्बल बना रही हैं। ऐसी अवस्था में पूँजीपति और ठाकुर श्रेणी की स्थिति बनाये रखनेवाले गांधीवाद से हम यही आशा रख सकते हैं कि वह मैशीनों को इस देश और मनुष्य समाज के नाश का कारण बताये और चर्खे से ही इस देश तथा सम्पूर्ण संसार को मुक्ति प्राप्त करने का उपदेश दे †।

बीस वर्ष के अनुभव से यह बात निश्चय हो चुकी है कि ग्रामोद्योग

† नेशनल हैरल्ड २७-७-४१ पृ० ६ पर महात्मा गांधी का 'खादी जगत' से उद्धृत लेख *Charkha to bring peace to world.*

और घरेलू धन्दे न तो जनता का आर्थिक शोषण दूर कर सके हैं, न उनसे कोई आर्थिक सुधार हुआ है। वे केवल श्रेणी संघर्ष की भावना को सुस्त कर देने का उपाय हैं। इससे श्रेणी संघर्ष मिट नहीं जायगा। पूँजीपति श्रेणी को अलबत्ता इस बात का अवसर मिलेगा कि वह शोषितो को देर तक दबाये रखने के लिये गांधीवादी नाज़ीवाद की स्थापना भारत में कर सके।

राष्ट्रीय शिक्षा

गाधीवादी रचनात्मक कार्य-क्रम में दूसरी वस्तु राष्ट्रीय शिक्षा है। राष्ट्रीय शिक्षा से अभिप्राय है, प्रचार द्वारा जनता को स्वतंत्रता की लड़ाई के लिये तैयार करना। जनता को यह ज्ञान होना कि उनकी हालत असह्य है, किस प्रकार के परिवर्तन से उनकी अवस्था सुधर सकती है, परिवर्तन करने का उपाय क्या है, यही राजनैतिक शिक्षा है।

पुरानी व्यवस्था को छोड़कर नयी व्यवस्था लाने के लिये कुछ कारण होने चाहिये। यदि हम नई व्यवस्था समाज में लाना चाहते हैं, तो अपनी मौजूदा अवस्था के प्रति समाज में असंतोष होना आवश्यक है। संतोप की प्रशंसा कर असंतोष की चाहे जितनी निन्दा की जाय परन्तु समाज को उन्नति और विकास की नई व्यवस्था की ओर उसकी संकटमय अवस्थाके प्रति असंतोष ही ले जा सकता है। समाज में जीवन निर्वाह की उचित व्यवस्था और उन्नति की गुंजाइश न होते हुए भी यदि संतोष किया जायगा, तो हिंसा को सहते रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने के सिवा और क्या परिणाम हो सकता है?

भारतवर्ष के लिये राष्ट्रीय शिक्षा. यही हो सकती है कि जनता अपनी कठिनाइयो और उनसे मुक्ति प्राप्त करने के उपायो को सामाजिक और राष्ट्रीय रूप में सोचे। सासारिक उन्नति की बात न सोचकर सदा परलोक की ही बात सोचने से देश की जनता को प्रत्येक बात

व्यक्तिगत हानि लाभ के दृष्टिकोण से देखने का अभ्यास हो गया है। इस जीनन और सासारिक उन्नति को केवल पाप का दलदल समझने और संसार से परे की वस्तु ईश्वर से साक्षात्कार करना जीवन का उद्देश्य समझने से मनुष्य सामाजिक भाव से शून्य हो जाता है। भगवान का साक्षात्कार और परलोक मनुष्य का बिल्कुल व्यक्तिगत मामला है। त्याग, वैराग्य से निर्लिप्त होने के लिये समाज की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। आध्यात्म और निवृत्ति का मार्ग सामाजिकता और राष्ट्रीयता की भावना का विरोधी है।

समाज और राष्ट्र से हमारे सम्बन्ध सासारिक हैं। जब तक हम सांसारिक उन्नति को महत्व नही देते, अपने समाज और राष्ट्र की परवाह हमे नही हो सकती। समाज और राष्ट्र का अंग हम उसी अवस्था में अपने आपको समझ सकते हैं, जब हमारे हित समाज और राष्ट्र के हित से मिले और पूरे हो। भारत में इस भावना के लाने की आवश्यकता है।

जनता के जिन लोगो का जीवन एक ढग से गुज़रता है, जिनके लाभ और कष्ट एक बात में हैं, वे एक श्रेणी बन जाते हैं। जनता को उन्नति और जीवन के अधिकार प्राप्त करने के मार्ग पर लाने के लिये श्रेणी के रूप मे मिलकर चलने की शिक्षा देना आवश्यक है। जिन लोगों को इस समय जीवन निर्वाह के अधिकार और साधन नही हैं, जो परिवर्तन द्वारा इन्हे प्राप्त करना चाहते हैं, वे सब एक श्रेणी के हैं। परिवर्तन और स्वराज्य की आवश्यकता इसी श्रेणी को है। यही श्रेणी परिवर्तन और स्वराज्य क़ायम कर सकती है। इस श्रेणी की शक्ति सबसे अधिक है, क्योंकि प्रति हज़ार मनुष्यो में नौ सौ निन्नानवे लोग इसी श्रेणी के हैं।

इस श्रेणी के हाथ मे शासन और अधिकार आने में जो श्रेणी अपनी हानि समझती है, वह श्रेणी जनता के राज और स्वराज्य की

विरोधी है। जनता को अधिकार या स्वराज्य मिलने से अधिकारों की मलिक इस शोषक श्रेणी के अधिकार छिनेंगे। जनता और इस श्रेणी में संघर्ष होगा। समाज में जब कभी परिवर्तन हुआ, श्रेणी संघर्ष से ही हुआ।

समाज की व्यवस्था सदा बलवान श्रेणी के निश्चय से होती है। आइन्दा भी यही होगा। समाज की मौजूदा अवस्था में सबसे अधिक शक्ति शोषित श्रेणी में ही है। इनका हित जिस तरह पूरा हो सके, अधिकार इनके हाथ में रहे, उसी व्यवस्था से समाज मे शान्ति हो सकती है, वर्ना संघर्ष चलता रहेगा। पूँजीपति प्रणाली इस श्रेणी को अस्वाभाविक ढंग से दबाये हुए हैं। इसी कारण अव्यवस्था है, अव्यवस्था को दूर करने के लिये संघर्ष हो रहा है।

गाधीवाद की राष्ट्रीय शिक्षा का मूल मंत्र है; समाज मे श्रेणी संघर्ष नहीं होना चाहिए, क्योंकि संघर्प हिंसा है। जब समाज मे श्रेणियाँ हैं, तो उसके परिणाम शोषण से कैसे बचा जा सकता है? प्राण रहते अपने जीवन की रक्षा के लिये शोषित को संघर्ष करना ही होगा। श्रेणी संघर्ष रोकने का उपाय है, कि समाज में श्रेणियाँ न रहें। यह कम्युनिज़्म का समाजवादी कार्य-क्रम है। समाज और देश में श्रेणियाँ न रहने से शोषण के कारण और साधन न रहेंगे। ऐसी व्यवस्था के लिये प्रयत्न करना ही स्वराज्य का राष्ट्रीय कार्य-क्रम है। यह कार्य-क्रम तभी पूरा हो सकता है, जब हज़ार में से नौ सौ निन्नानवे अपने हितो को पहचान कर संगठित रूप में शक्ति और अधिकार प्राप्त करने का यत्न करे। इस मार्ग में संघर्प आवश्यक है। गाधीवाद अपनी राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा श्रेणी संघर्ष की सम्भावना को रोकने और शोषित और शोषक श्रेणियों के सहयोग के लिये रचनात्मक कार्य-क्रम का उपदेश देता है।

राष्ट्रीय शिक्षा और रचनात्मक कार्य की ज़ाहिरा शक्ल गाँव की गलियों में झाड़ू लगाना, अछूत श्रेणियों को अक्षरज्ञान कराना, अछूतों

के लिये मन्दिर का दरवाज़ा खुलवाना उन्हे कुँयें पर चढ़ाना और दवाई बाँटना है। यह सभी काम बहुत परोपकार और दया के हैं परन्तु जनता का यह बडा भाग दूसरे के उपकार और दया के आसरे क्यो पडा रहे? अपनी सहायता और कल्याण करने की शक्ति उनमें क्यों न हो? इन्हें दलित और मोहताज समझ कर मालिक श्रेणी इन पर दया करने के लिये तो तैयार हो जाती है परन्तु जब यह दलित और मौहताज मालिक श्रेणी की दया और कृपा करने की शक्ति में हिस्सा-बाँट करना चाहते हैं, तो मालिक श्रेणी इसे बग़ावत समझने लगती है। गाधीवाद इसे हिंसा बताकर रोकने का यत्न करने लगता है। दया और कृपा का पात्र बने रह कर दलित श्रेणी कभी भी स्वतंत्र और आत्म निर्भर नहीं बन सकेगी। इसका उपाय तो है कि संघर्ष द्वारा यह श्रेणी शक्ति और अधिकार प्राप्त करे।

इस सब दया और परोपकार का एक दूसरा प्रयोजन भी हो सकता है। विदेश से आकर इस देश में परोपकार के कार्य करनेवाले ईसाई पादरियों के विषय में महात्मा गाधी की राय है कि उनके इन सब कर्मों से भारत की भलाई नहीं हो रही है। उनमे एक प्रकार का स्वार्थ छिपा है। पूँजीपतियों के धन से चलनेवाले दरिद्र-सहायक गाधी सेवा-सघ, हरिजन सेवक-संघ, अखिल भारतीय चर्खा-संघ और गाधीवादी राष्ट्रीय शिक्षा के इस दया और परोपकार के कार्य-क्रम में क्या श्रेणी संघर्ष को टाल कर दरिद्र लोगों को महाजनों की कृपा और दया का विश्वास दिलाकर मोहताज बनाये रखना उद्देश्य नहीं? वास्तविक प्रयोजन है कि श्रेणी संघर्ष नही होना चाहिये। श्रेणी संघर्ष, दलितों की अपनी उन्नति का प्रयत्न है, इसके सिवा जनता का राज सम्भव नहीं।

संयुक्त मोर्चा

श्रेणी संघर्ष से बचने के लिये राजनैतिक दलील यह है कि विदेशी

साम्राज्यशाही की गुलामी से छूटने के लिये हमें इस देश की जनता की सम्पूर्ण शक्ति स्वराज्य प्राप्ति के मोर्चे पर लगा देनी चाहिये। इस देश की शोषित और शोषक श्रेणियों को आपस में न लड़कर पहले स्वराज्य ले लेना चाहिये। अपना राज्य हो जाने के बाद, जनता जैसी व्यवस्था चाहेगी, देश मे कायम हो जायगी। यह बात कह देने में उतनी ही आसान है जितना कि १६२० में यह कह देना आसान था कि सब भारतवासी सरकार से असहयोग कर दें, तो फौरन स्वराज्य हो जायगा। वह बात अमल में न आसकी। इसी प्रकार भारत की प्रजा के पहले मिलकर स्वराज्य प्राप्त कर लेने और बाद मे आपस के झगड़े निपटा लेने की बात भी सिर्फ कह देने भर की है। जिन लोगों के उद्देश्यों मे समानता नहीं, उनका एक साथ मिलकर किसी काम को सफल बना लेना सम्भव नहीं।

स्वराज्य के लिये प्रयत्न करने का विचार उठते ही सवाल पैदा होता है, स्वराज्य होगा क्या? दोनो श्रेणियाँ स्वराज्य का रूप अपने-अपने मन में बनाने लगती हैं। यदि एक का स्वराज्य दूसरे की पराधीनता और शोषण है, तो वे उसके लिये एक साथ प्रयत्न कैसे कर सकती हैं?' गाधीवाद इस बारे में ग़रीब जनता से ही त्याग की आशा करता है। उन्हे उपदेश दिया जाता है, स्वराज्य चाहे जैसा भी हो, पहले भारत-वासियों के हाथ राज्य आने दो, फिर तुम जैसा चाहे कर सकते हो? मानो जनता के कान में चतुरता से दी जानेवाली सलाह का भेद मालिक श्रेणी को मालूम नहीं। मासूम की तरह वे जनता की चालबाज़ी मे फँसकर स्वराज्य के लिये कोशिश करेंगे और बाद मे जनता के हाथ में बेबस हो जायँगे। ऐसे भोलेपन की आशा पक्की बुद्धि की मालिक श्रेणी से नहीं की जा सकती। पिछले बीस वर्ष के सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन में यह बात स्पष्ट हो चुकी है।

बलिदान करने की आशा की जा सकती है तो केवल साधनहीन

श्रेणी से! कुछ छिन जाने का भय उन्हे है नहीं, उनके पास अपना कहने को केवल शरीर ही है। उनके जीवन पर हरदम संकट आया रहता है। किसी प्रकार जीवन निर्वाह का अवसर मिले, इस आशा में वे अपने शरीर की भी बाज़ी लगा देते हैं। पिछले बीस वर्ष में इसके एक नहीं अनेक प्रमाण मिल चुके हैं।

मान लिया, स्वराज्य के लिये कुर्बानी करने की अपील शोषित श्रेणी ही से की जाय। परन्तु शोषित श्रेणी किस आशा से यह कुर्बानी करे? अपनी शक्ति और आवश्यकता का ज्ञान एक दफे शोषित श्रेणी को हो जाने पर उन्हे फिर दबाकर रखना सम्भव न रहेगा, इस बात को गाधीवाद ख़ूब समझता है। इसलिये वह जन आन्दोलन की बात को किसी-न-किसी कारण टाल ही देता है। शोषक श्रेणी अपनी स्थिति को ख़ूब समझती है। संयुक्त मोर्चे की बात उन्हें बहुत पसन्द आती है क्योंकि इससे फिलहाल तो श्रेणी संघर्ष के भय से छुटकारा मिल ही रहा है। यह श्रेणी अपनी हुकूमत मे स्वराज्य ज़रूर चाहती है परन्तु यह इतनी अदूरदर्शी नहीं, कि शोषित श्रेणी की शक्ति और जागृति को इतना बढ़ा दे, और आज इस श्रेणी की शक्ति से शासन अधिकार पाकर कल स्वयम उसीके हाथों बलिदान हो जाय। इसलिये आन्दोलन को व्यापक रूप देकर राज-पलट के ढंग पर स्वराज्य का आन्दोलन चलाना उन्हे मंजूर नहीं। वे ऐसा आन्दोलन चाहते हैं, जिससे व्यवस्था मे कोई परिवर्तन न हो, ब्रिटिश सरकार पर शनैः शनैः बोझ पड़ता रहे † और ब्रिटिश सरकार समझौते द्वारा शनैः शनैः शासन की बागडोर इन्हे यो थमाती जाय कि शोषित श्रेणियों को उभरकर शासन का अधिकार अपने हाथ में लेने का मौक़ा न मिल सके।

ब्रिटिश सरकार ऐसा करने के लिये जल्दी तैयार नहीं होती तो

† जिस प्रकार का व्यक्तिगत सत्याग्रह सन् १९४० अगस्त से चल रहा है।

भी घबराहट का कोई कारण नहीं। समय टालते जाना ही मालिक-श्रेणी के हक़ में सबसे अच्छी नीति है। बजाय ऐसा स्वराज्य या जनता का राज्य लाने के जिसमें उनकी आज की सी हुकूमत भी न रहे, मौजूदा हालत ही उनके लिये बेहतर है। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी की इस भावना को प्रकट करने के लिये गाधीवाद कहता है, यदि स्वराज्य हिंसा * के बिना प्राप्त नहीं हो सकता तो ऐसे स्वराज्य की हमें ज़रूरत नहीं।

जब स्वराज्य के उद्देश्य के बारे में श्रेणियों की एक राय नहीं, तो उसके लिये संयुक्त मोर्चा किस प्रकार तैयार हो सकता है? मालिक श्रेणियाँ और गाधीवाद स्वराज्य के लिये सौ वर्ष प्रतीक्षा कर सकता है। स्वराज्य के बिना उनके प्राण नहीं निकले जा रहे परन्तु शोषित श्रेणी के लिये तो मौजूदा व्यवस्था में प्राणों पर संकट आया हुआ है। किस हिंसा के भय से वे स्वराज्य को मुल्तवी कर सकती है? उन पर दिन रात होनेवाली हिंसा से बड़ी हिंसा कौन है? अपने हाथ में शासन का अधिकार लेने के प्रबल और व्यापक कार्य-क्रम को यह श्रेणी उसी समय तक स्थगित किये हुए हैं जब तक वह संगठन और जाग्रति द्वारा अपने आपको उसके लिये तैयार नहीं कर लेती। इस उचित तैयारी का अर्थ है, शोषित श्रेणी में जाग्रति और उनका सैनिक अनु-शासन मे संगठन। यदि हम स्वराज्य की आवश्यकता अनुभव करते हैं, तो संयुक्त मोर्चे का 'नौमन तेल बटोरने और गाधीवादी नीति को नचाने' (स्वराज्य की लडाई लड़ने) का अरमान छोडकर हमें हज़ार में से नौ सौ निन्नानवे की श्रेणी के बल पर ही उसे लेने का यत्न करना होगा। सब शोषितों का मोर्चा ही संयुक्त मोर्चा है।

शोषित श्रेणी की जनता का राज्य या स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग में जो श्रेणी आकर रुकावट डालेगी, वह श्रेणी संघर्ष को हिंसामय

* इस हिंसा का अर्थ है, श्रेणी संघर्ष।

बनायेगी। यदि गाधीवाद श्रेणी संघर्ष को दूर करना और स्वराज्य के लिये संयुक्त मोर्चा बनाना चाहता है तो उसे मालिक श्रेणी को जनता के हितों को पूर्ण करनेवाली व्यवस्था को स्वीकार करने का उपदेश देना चाहिए परन्तु वह चलता है उल्टा। वह उपदेश देता है, जनता को, ठाकुर श्रेणी के हाथ में अपनी लगाम दिये रहने का।

साम्प्रदायिक एकता

इस देश की राजनैतिक उन्नति के मार्ग में साम्प्रदायिक फूट एक भयंकर रुकावट है। कांग्रेस का कहना है कि अपना राज कायम रखने के लिये ब्रिटिश सरकार इस देश में साम्प्रदायिक झगड़े पैदाकर स्वतंत्रता के मार्ग में रुकावट पैदा कर रही है। यदि साम्प्रदायिक फूट द्वारा इस देश पर अपना राज क़ायम रखना ब्रिटिश सरकार के लिये आसान हो जाता है, तो सरकार के लिये ऐसा प्रयत्न करना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। स्वराज्य के लिये साम्प्रदायिक एकता आवश्यक है, तो उसे प्राप्त करने की जिम्मेवारी कांग्रेस पर है।

इस काम के लिये गाधीवादी कांग्रेस ने तीन उपायों का व्यवहार किया। उन्होंने साम्प्रदायिक झगडों की निन्दा की, साम्प्रदायिक झगडे पैदा करनेवाले लोगों को फुसलाने या संतुष्ट का यत्न किया, और महात्मा गाधी की आत्मिक शक्ति से मुसलमानो को प्रभावित करना चाहा! १९२४ सितम्बर मास में महात्मा गाधी ने इक्कीस दिन का उपवास कर साम्प्रदायिक झगडों और अत्याचार के विरुद्ध सत्याग्रह किया। इस बारे में सत्याग्रह की कभी न परास्त होनेवाली आध्यात्मिक शक्ति की सफलता हमारे सामने है।

किसी भी राजनैतिक आन्दोलन को सार्वजनिक रूप देने का विचार आते ही साम्प्रदायिक झगड़े का भय कांग्रेस के सामने आ खडा होता है। यह एक विचित्र बात है कि ज्यों-ज्यों हमारे देश में राजनैतिक

चेतना बढ़ रही है, त्यों-त्यों साम्प्रदायिकता भी बढती जाती है, इसका अर्थ हम यही समझ सकते हैं, कि देश के राजनैतिक आन्दोलन की बुनियाद में कुछ ग़लती है। कांग्रेस की गांधीवादी नीति के रचनात्मक कार्य-क्रम मे साम्प्रदायिकता को मिटाने का काम भी शामिल है परन्तु इस बारे मे वह कुछ कर न सकी। बजाय इसके कि कांग्रेस साम्प्रदायिकता को मिटा सकती, साम्प्रदायिकता ने कांग्रेस को बेदम कर दिया।

भारत में साम्प्रदायिकता को बढ़ाने की जिम्मेवारी बहुत हद तक कांग्रेस की गांधीवादी नीति पर है। साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दो तरह दिया गया। गांधीवादी कांग्रेस ने अपने प्रति जनता में श्रद्धा पैदा करने के लिये धार्मिक विश्वासों या साम्प्रदायिक भावों के सहारे अपील करना शुरू किया। कांग्रेस के साथ सदा ही साम्प्रदायिक आन्दोलन लगे रहे। आरम्भ मे खिलाफत, फिर सिक्खों के गुरुद्वारा आन्दोलन और बाद में हिन्दुओं का अछूतोद्धार! इसके अतिरिक्त राजनीति की बुनियाद में भारतवासी मात्र के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली आर्थिक माँगों को महत्व न देकर उसे त्याग का आन्दोलन बना आध्यात्मिकता का बल देने का यत्न किया गया।

आत्मा, परमेश्वर और आध्यात्म की कल्पना प्रत्येक मज़हब या सम्प्रदाय के विश्वासों के अनुसार अलग-अलग है। गांधीवाद के तह में हिन्दू मज़हबी संस्कार हैं। मुसलमानों और ईसाइयो के पसन्द लायक़ बनाने के लिये इन सिद्धान्तों से ऋषियों और शास्त्रो के नाम हटा दिये गये हैं परन्तु बुनियादी संस्कार वहीं हैं। हिन्दू सम्प्रदाय के संस्कारों के रंग मे रँगी आध्यात्मिकता को जब कांग्रेस में नीति और कार्य-क्रम के रूप में राष्ट्र पर लादने का यत्न किया जाता है तो दूसरे सम्प्रदाय के लोग अपनी कल्चर और संस्कृति की दुहाई देकर अपना संगठन अलग बना, अपना अस्तित्व कांग्रेस की हिन्दू राष्ट्रीयता मे न

मिट जाने का यत्न करने लगते हैं। यदि कांग्रेस में हिन्दू आध्यात्मिकता का रंग चढ़ाने की कोशिश न की जाती तो भारत की जनता स्वाभाविक तौर पर एक मिलीजुली संस्कृति और राष्ट्रीयता को जन्म देती।

गांधीवाद ने भारतवर्ष की पुराने संस्कारों—हिन्दू संस्कारों—को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न में नई परिस्थितियों से उठनेवाली संस्कृति के मार्ग में रुकावट डाल दी। एक सम्मिलित संस्कृति न बनने देकर गांधीवाद ने सम्राट अकबर के दीन-इलाही की तरह गांधीवादी मज़हब को जन्म दिया है, जिसमें मज़हब के नियमों सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह के सभी मज़हबों की पसन्द के लायक़ बनाने की कोशिश की गई है। इससे पुराने चले आये विश्वासों और मज़हबों में यह एक नया मज़हब और विश्वास आ गया है। मज़हब पहले कभी एकता पैदा नहीं कर सका, वह सदा फूट ही डालता आया है, तो गांधीवाद का अधकचरा मज़हब, जिसमें राजनीति और आध्यात्म दोनों शामिल हैं, कैसे एकता स्थापित कर देगा। मज़हब के साथ ही उसने राजनैतिक एकता को भी डुबो दिया।

कांग्रेस द्वारा साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलने का दूसरा कारण है, कांग्रेस में पूँजीपति और मध्यम श्रेणी का नेतृत्व। यह श्रेणी सभी क्षेत्रों में सबसे अधिक महत्व अपनी श्रेणी के लोगों को ही देती है। राष्ट्रीय आन्दोलन में दूसरे मज़हबों की जनता को समेटने के लिये कांग्रेस पर कब्ज़ा रखने वाले लोगों ने उन मज़हबों की सर्वसाधारण जनता को अपील करने के बजाय, उन मज़हबों में अपनी श्रेणी के लोगों से ही अपील की। जिस तरह कांग्रेस में भाग लेनेवाले या उदार विचार के (Liberal) कहानेवाले पूँजीपति और ऊँची-मध्यम श्रेणी के लोग जनता के हितों की अपेक्षा अपने स्वार्थ की चिन्ता करते हैं, उसी तरह मुसलमान ईसाई अछूत सिक्ख आदि सम्प्रदायों के पूँजीपति और ऊँची मध्यम श्रेणी के लोग भी अपने संकुचित

स्वार्थों में फँसे हैं। पूँजीपति विचारधारा की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि अपनी श्रेणी के हित का विचार रखते हुए भी वैयक्तिक स्वार्थ उन्हे अन्धा कर देता है।* स्वार्थ की यह भावना हिन्दुस्तान के मुसलमान और दूसरे सम्पत्तिशाली लोगों में भी है। जिस मतलब को पूरा करने के लिये काग्रेस मुसलमानों की सम्पन्न श्रेणी को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये निमंत्रण देती है, उनके लिये वह प्रयोजन आन्दोलन की तवालत में फँसे बिना, काग्रेस से दूर रहकर ही पूरा हो सकता है; तब फिर वे राष्ट्रीय आन्दोलन से सहयोग करें तो क्यों?

काग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रयोजन है, सरकार के शासन में सम्पत्तिशाली श्रेणी के लिये अधिक प्रतिनिधित्व की माँग। मुसलमान और दूसरे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की पूँजीपति श्रेणियों को यह प्रतिनिधित्व सरकार की कृपा से उससे कहीं अधिक मिल रहा है जितना कि स्वतंत्र भारत मे या किसी भी प्रजातंत्र देश में मिल सकता। मुसलमानों तथा अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की सम्पत्तिशाली श्रेणियो को तो स्वराज्य मिला ही हुआ है। बहुत सम्भव है, काग्रेस की कल्पना का स्वराज्य मिलने पर उनका यह प्रतिनिधित्व कम हो जाय। लेकिन सलमान तथा दूसरे सम्प्रदायो की जनता को इससे क्या लाभ?

किसी भी सम्प्रदाय की जनता ऐसे कार्य-क्रम में सहयोग देने के लिये अवश्य तैयार होगी जिससे उनके जीवन की कठिनाइयाँ दूर हों परन्तु ऐसा कार्य-क्रम आर्थिक होगा। सर्वसाधारण जनता के इस कार्य-क्रम से शोषण करनेवाली श्रेणी को अपनी हानि जान पड़ेगी। गाधीवादी नीति में इसे हिंसा कहा जायगा। यह बात सही है कि

---

* परस्पर होड़ और मुकाबिला (Competion) पूँजीवाद का स्वभाव है। इसी स्वभाव के कारण पूँजीपतियों की संख्या कम होती जाती है और संसार में साम्राज्यशाही युद्ध सर्वनाश फैलाते हैं।

इस प्रकार का आर्थिक आन्दोलन चलाने में पूँजीपति साम्प्रदायिक नेता अड़चनें अवश्य डालेंगे। वे साम्प्रदायिकता का सहारा लेकर जनता को बहकाने और अपने वश में रखने का यत्न करेंगे। इन लोगों का महत्व एक ख़ास सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कहला सकने के कारण ही है। साम्प्रदायिक प्रश्नों और झगड़ों के खड़ा होने पर ही इनकी क़द्र होती है। साम्प्रदायिक मेल हो जाने या इस समस्या के मिट जाने पर इनका कोई महत्व नहीं रहेगा।

यदि यह लोग बेमतलब बातों से जनता का ध्यान आकर्षित कर आन्दोलन खड़ा कर सकते हैं, तो राष्ट्रीय माँगों (जीवन समस्या की माँगों) पर जनता को क्यों संगठित नहीं किया जा सकता ? कांग्रेसी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता की अपीलों की अपेक्षा जनता पर साम्प्रदायिक अपीलों का असर इसलिये अधिक होता है कि उसमें साम्प्रदायिक दृष्टि से लाभ जान पड़ता है। कांग्रेसी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता बिलकुल ही खोखली है। समाजवादी आर्थिक कार्य-क्रम की राष्ट्रीयता सर्वसाधारण को अधिक सशक्त और सचेत बना सकती है और उसे मज़हबी भ्रम-जाल की आत्म हत्या से भी बचा सकती है, इस बात का प्रमाण मज़दूर आन्दोलनों में मिल चुका है।

जिन स्थानों में मज़दूर श्रेणी रूप से सचेत हो गये हैं और अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिये संगठित हो रहे हैं, वहाँ उनमें साम्प्रदायिक वैमनस्य दिखाई नहीं देता। कानपुर, अहमदाबाद आदि स्थानों में सन् १६३६ के बाद से साम्प्रदायिक झगड़े होने पर भी संगठित मज़दूर इन झगड़ों से दूर रहे। साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिये जिस जागृति की आवश्यकता है, उसे गांधीवाद श्रेणी द्रोह कह-कर दबा देना चाहता है।

साम्प्रदायिक द्रोह और हिंसा का उपाय करने के लिये गांधीवाद साहस और वीरता का उपदेश देता है। कभी वह वीरता पूर्वक, हाथ

हिलाये बिना मर जाने की सलाह देता है और कभी जब साम्प्रदायिक हिंसा कत्ल, बलात्कार, खासकर सम्पत्ति की लूट का रूप लेती है, तब वह कायरता पूर्ण अहिंसा के बजाय, नितान्त आवश्यक अवस्था में, तोला दो तोला शारीरिक शक्ति के प्रयोग की भी राय दे देता है। लेकिन यह सब उपाय साम्प्रदायिक हिंसा को सहने के लिये हैं, दूर करने के नहीं। साम्प्रदायिक हिंसा को दूर करने का उपाय तो सर्वसाधारण को जीवन रक्षा के मार्ग पर एकता और सहयोग द्वारा बढ़ना है। इसे श्रेणी द्रोह न कह श्रेणी की आत्मरक्षा कहना ठीक होगा।

समाजवाद का कार्यक्रम

गाधीवाद के सत्य अहिंसा के आदर्शों और क्रियात्मक रूप में परस्पर विरोध है। सिद्धान्त रूप से गाधीवाद सत्य और अहिंसा की पूजा करता है परन्तु समाज में मौजूद असत्य और हिंसा दूर करने के प्रयत्नों से उसे सहानुभूति नहीं। समाजवाद सत्य, अहिंसा का उद्देश्य मनुष्य समाज की उन्नति और सुख, शान्ति समझता है। इन सिद्धान्तों के अनुकूल जब समाजवादी अन्याय और हिंसा दूर करने का प्रयत्न करता है, गाधीवाद को अहिंसा भंग होती दिखाई देने लगती है। गाधीवाद के सत्य और अहिंसा के उद्देश्य को यदि समाज हित के विचार से क्रियात्मक रूप दे दिया जाय, तो वह समाजवादी कार्यक्रम में बदल जायगा। ऐसा करना गाधीवाद को मंज़ूर नहीं वह अहिंसा के नाम की माला जपकर उसे केवल छिछले तौर पर अमल में लाना चाहता है। गाधीवाद के अनुसार अहिंसा का आदर्श है:—

"अहिंसा केवल आचरण का स्थूल नियम नहीं बल्कि मन की एक वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं द्वेष की गंध तक न हो उसे अहिंसा समझना चाहिए"⋯⋯*। अहिंसा का भाव दृश्य परिमाण में (दिखा-

* 'गाधी विचार दोहन' पृ० ६।

वटी) नहीं, बल्कि अन्तःकरण की राग द्वेषहीन स्थिति में है""*। अहिंसा का साधक केवल इतने से ही संतोष नहीं मान सकता कि वह ऐसी वाणी बोले, ऐसा कार्य करे, जिससे किसी जीव को उद्वेग प्राप्त न हो, अथवा मनमें भी किसी प्रकार का द्वेष भाव न रहने दे, बल्कि जगत मे प्रवर्तित दुखों की ओर भी वह देखेगा और उन्हे दूर करने के उपायों का विचार करता रहेगा। इस प्रकार की अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कार्य या निश्क्रियता नहीं, बल्कि ज़बरदस्त प्रवृत्ति अथवा प्रक्रिया है ×।"

यदि अहिंसा केवल 'निवृत्ति'—यानी हिंसा से परहेज़—ही नहीं, बल्कि 'प्रवृत्ति'—अर्थात् अहिंसा की स्थापना करना—है, तो इसके लिये प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य होजाता है। समाज में जारी हिंसा का उपाय करने के लिये ऐसे कारणों और साधनों को दूर करना होगा जिसके कारण हिंसा होती है। केवल व्यक्तिगत रूप से अहिंसा का पालन करके हम अहिंसा की स्थापना नहीं कर सकते। हिंसा को सहना और उसके विरुद्ध प्रयत्न न करना, हिंसा के साथ सहयोग है।

देश और समाज से हिंसा उन परिस्थितियों को हटाने से ही दूर हो सकती है जिनके कारण जनता अपने जीवन की रक्षा करने में असमर्थ है और अपने परिश्रम के फल पर अधिकार खो बैठी है। इस अहिंसा की स्थापना से समाज के कुछ व्यक्तियों को अपना नुकसान होता जान पड़ता है, तो यह उनका भ्रम है। समाज के अंग होने के नाते उनका वास्तविक लाभ सम्पूर्ण समाज के लाभ मे है। यदि कुछ लोग अपने संकुचित स्वार्थ से अन्धे होकर सम्पूर्ण समाज को हानि पहुँचाये, तो उनके इस काम को रोकना, हिंसा नहीं। ऐसा करने का अर्थ यह नहीं कि मालिक श्रेणी के प्रति समाजवादी कार्यक्रम में कोई द्वेष या हिंसा का भाव है, यह कार्यक्रम इस श्रेणी से वैर पूरा करना

* 'गांधी विचार दोहन' पृ० ७। × पृ० ८।

या बदला लेना नहीं चाहता। समाजवादी कार्यक्रम सम्पूर्ण समाज के लिये समान अवसर और अपने परिश्रम के फल का अधिकार चाहता है। समाज में मालिक श्रेणी के लोग भी शामिल हैं वे उससे अलग नहीं।

गाधीवाद स्पष्ट कहता है—"अहिंसा का भाव दृश्य परिमाण में दिखावटी रूप से—नहीं बल्कि अन्तःकरण की वृत्ति मे है।" ठीक यही बात समाजवादी कार्यक्रम के बारे में समझनी चाहिए। समाजवादी कार्यक्रम जब यह कहता है कि इस देश के पैदावार के साधन पूँजीपति और ज़मींदारों के अधिकार मे न रहकर समाज के अधिकार में रहने चाहिए, तब उसका अभिप्राय पूँजीपति और ज़मींदार का मन दुखाना नहीं बल्कि समाज से इस श्रेणी के प्रति विरोध की भावना तथा अव्यवस्था दूर करना है। इसलिये समाजवादी कार्यक्रम के अनुसार पैदावार के साधनो को समाज की सम्पत्ति बनाने का यत्न करने में हिंसा की वृत्ति नहीं हो सकती। समाजवाद के बारे में यह धारणा कि वह मालिक श्रेणी के प्रति हिंसा और विरोध की लहर है, अज्ञान और भ्रम है।

समाजवाद को साम्यवाद कहकर उसमें ज़ोर और ज़बरदस्ती से सबको बराबर करने का भाव जोड़ देना भी समाजवाद को जानबूझकर सिर नीचे और पैर ऊपर कर दिखाना है। जबरदस्ती सबको बराबर करने का यह अर्थ निकलता है कि व्यक्ति को अपनी योग्यता, प्रतिभा और सामर्थ्य के व्यवहार का अवसर न होगा। समाजवाद का अर्थ समानता लाने के लिये सबको ठोंक पीटकर बराबर कर देना नहीं। समाजवाद का अर्थ है, समाज में जीवन का ढंग सामाजिक रूप से हो। दूसरों की हिंसा द्वारा कोई व्यक्ति स्वार्थ को सिद्ध न करे। सबको उन्नति का समान अवसर हो। सब लोग परिश्रम करने का अवसर समान रूप से पाये और अपने परिश्रम के फल पर सबको

समान अधिकार हो। यह नहीं कि कुछ आदमियों को तो दूसरो का परिश्रम हड़प जाने का अधिकार हो और अधिकाश को अपने परिश्रम का भी फल न मिले। सामाजिक व्यवस्था सबको समान होने का अवसर देगी। समानता समाजवाद का परिणाम होगा न कि समानता द्वारा समाजवाद लाया जायगा।

अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिये भारतीय समाजवादी रक्तपात और मारकाट का समर्थन नहीं करते। समाजवाद का मार्ग असहयोग द्वारा सत्याग्रह का मार्ग है। समाजवाद के सत्याग्रह और असहयोग का परिणाम गाधीवाद से भिन्न है क्योंकि वह आध्यात्मिकता और ईश्वर की प्रेरणा के आधार पर नहीं, बल्कि सांसारिक परिस्थितियों की वास्तविकता के आधार पर क़ायम है।

सत्याग्रह का उद्देश्य है न्याय और अहिंसा के लिये प्रयत्न करना। गाधीवाद इस बात में समाजवादियों से सहमत है कि इस देश में शोषण के कारण भयंकर और व्यापक मे हिंसा और श्रेणी विरोध मौजूद है। जनता के जीवन की रक्षा के लिये इसका उपाय होना चाहिए। समाजवादी इसके लिये शोषक श्रेणी से असहयोग की तजवीज़ करते हैं। असहयोग क्या है? "विरोधी अपना तंत्र सत्याग्रही पक्ष की सहायता के विना नहीं चला सकता, ऐसा अनुभव कराना असहयोग का लक्ष्य है। इसलिये यह असहयोग—निश्चय ही सत्य अहिंसा साधनों द्वारा—इतना तीव्र किया जा सकता है कि जिससे वह तंत्र बन्द पड़ जाय *।"

असहयोग द्वारा सत्याग्रह के सिद्धान्त के अनुसार समाजवादियों का कार्यक्रम है कि देश भर के किसानों, कारख़ानों, रेलों, खानों तथा दूसरे कामों में मज़दूरी या नौकरी कर मौजूदा व्यवस्था को चलानेवाली जनता को उनकी अवस्था और आवश्यकता का ज्ञान

* 'गाधी विचार दोहन' पृ० ६१।

कराकर इस व्यवस्था से असहयोग करने का मार्ग बताया जाय। हिंसा और अन्याय की व्यवस्था से असहयोग करना हिंसा नहीं, न इसमें किसी प्रकार की जबरदस्ती है। साधारण शब्दों में इस असहयोग को देश भर के सभी पेशों और उद्योग धन्दों की आम हड़ताल कहा जा सकता है। इस असहयोग में देश की उस सब जनता को भाग लेना चाहिये जिन्हें जीवन निर्वाह के लिये उचित अवसर और साधन नहीं मिल रहे और अपने परिश्रम का फल नहीं मिल रहा। मध्यम श्रेणी या ऊँची श्रेणी के अच्छे आमदनी पानेवाले लोग, जो शोषण की व्यवस्था में सहायक होकर अपना निर्वाह करते हैं, यदि इस व्यापक अहयोग में शामिल नहीं होते, तो उन्हें शोषित जनता का अंग न समझ मालिक श्रेणी का ही सहायक समझा जाय परन्तु समाज के लिये पैदावार करने और शोषित होनेवाली श्रेणी के सभी अंगों को इस व्यापक असहयोग में शामिल होना चाहिये।

इस व्यापक असहयोग को सफल बनाने के लिये प्रचार द्वारा जनता को राजनैतिक शिक्षा देने की आवश्यकता है। किसान, मज़दूर, मिस्त्री, मुंशी, बाबू सभी को यह समझना होगा कि वे पैदावार के महान् कार्य के भिन्न-भिन्न अंगों को पूरा करते हैं, वे सब एक हैं। इस असहयोग की सफलता जनता की एकता पर निर्भर करती है। परिश्रम करनेवाली जनता में से जो व्यक्ति सार्वजनिक लाभ, अपने श्रेणी हित और अपने वास्तविक हित को न पहचानकर शोषण की व्यवस्था को बनाये रखने के लिये सहायता देना चाहें, उन्हें सत्याग्रह के उपाय द्वारा उनके अपने हित और जनता के सार्वजनिक हित को हानि पहुँचाने से रोकना होगा। यह काम शारीरिक बल से नहीं बल्कि जनता की राय के दबाव (जिसे गांधीवाद नैतिक बल कहेगा) और अहिंसात्मक धरना देने के तरीक़े से होगा *।

---

* यह विचित्र बात है कि मजदूर या किसान जब अपने परिश्रम की

समाजवादी कार्यक्रम असहयोग और सत्याग्रह में किसी प्रकार के शारीरिक बल प्रयोग या हिंसा की तजवीज़ नहीं करता। यह बहुत सम्भव है कि मौजूदा व्यवस्था में जो श्रेणी अपने शासन द्वारा शोषण कर रही है, इस असहयोग को असफल कर देने के लिये शस्त्रों और बल के प्रयोग द्वारा हिंसा करे। शस्त्रों और बल का प्रयोग पूँजीपति और शासक श्रेणी स्वयम् ही नहीं करती। इस काम के लिये वह शोषित श्रेणी किसान, मज़दूर और नौकरी पेशा लोगों मे से ही कुछ को किराये पर ले लेती है। शोषित श्रेणी पर शासन शोषित श्रेणी के लोगो का उपयोग करके ही किया जाता है और इस कार्य के लिये किराये पर लिये गये लोगों का भी शोषण होता है। रोटियो के दाम पर वे दूसरो का राज क़ायम रखते हैं। समाजवादी कार्यक्रम शोषण की व्यवस्था का अन्त करनेवाले आन्दोलन में इन लोगो को भी शामिल करता है और

पैदावार का उचित भाग माँगने के लिये आन्दोलन करते हैं और अपने साथियों को इस आन्दोलन में विश्वासघात करने से रोकने के लिये धरना देते हैं, तो महात्मा गाधी इसे हिंसा का फ़तवा दे देते है। कानपुर और अहमदाबाद में मजदूरों ने जब अपने परिश्रम से मालिकों को पहुँचाये हुए मुनाफे में से कुछ भाग माँगकर अपने बाल बच्चों का भूखा पेट भरने का आन्दोलन किया और इस आन्दोलन में साथ न देकर अपनी श्रेणी को हानि पहुँचाने के लिये मिलों में जाने को तैयार मजदूरों के सामने मिल के दरवाज़े पर लेटकर सत्याग्रह किया, तो महात्मा गाधी ने मजदूरों के काम की निन्दा की और मिल मालिकों का यह अधिकार स्वीकार किया कि वे पुलिस बुलवा-कर इन मजदूरों को गिरफ्तार करवा सकते हैं। यदि शराब और विदेशी कपड़े से होनेवाली हानि से जनता को बचाने के लिये धरना देना सत्याग्रह है, तो शोषण द्वारा होनेवाली हिंसा में सहयोग देने से अपने साथियों को रोकने के लिये मजदूरों का मिलों के दरवाजे पर धरना देना क्योंकर हिंसा हो सकती है?

उन्हे भी श्रेणी हित की राजनैतिक शिक्षा देना चाहता है। निजी संकुचित स्वार्थ में फँसे हुए कुछ शोषित लोग यदि आरम्भ में अपनी श्रेणी का साथ न भी देंगे तो आन्दोलन आरम्भ हो जाने पर उनकी आँखें खुल जायँगी। शोषक श्रेणी को बलवान और स्वामी समझ कर यह लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये उसका साथ देते हैं। आन्दोलन आरम्भ होजाने पर जब यह लोग अपनी श्रेणी की शक्ति देखेंगे, अपना वास्तविक हित पहचान अपनी श्रेणी का साथ देने लगेंगे। उस समय 'सेवक धर्म' और 'नमकहलाली *' इन्हे शोषण करनेवाले मालिक के पक्ष मे नहीं रख सकेगी। यदि मालिक श्रेणी असहयोग करनेवाली शोषित श्रेणी पर हिंसा करेगी तो इस हिंसा की जिम्मेदारी शोषित श्रेणी पर न होकर शोषक मालिक श्रेणी पर होगी। ऐसी अवस्था मे शोषक श्रेणी के लिये यही बेहतर है कि वह सदा पीढ़ी दर पीढ़ी हिंसा सहने के बजाय एक दफे हिंसा सहकर जीवित रहने का अवसर और अधिकार प्राप्त करले।

समाज के सब कार्य मेहनत करनेवाली श्रेणी के परिश्रम से ही चलते हैं। शोषण की व्यवस्था से शोषित जनता के व्यापक असहयोग का परिणाम यह होगा कि समाज के सब काम बन्द हो जायेंगे। समाज

---

* सेवक का धर्म मालिक श्रेणी द्वारा अपने सिद्धान्त के लिये गढा हुआ धर्म है जिससे मालिक दूसरे के शरीर और शक्ति द्वारा अपना स्वार्थ पूरा करता है। नमकहलाली के भाव की कल्पना भी इस प्रयोजन को पूरा करने के लिये ही की गई। यह विचार कि नौकर या मजदूर मालिक का दिया खाता है, ठीक नहीं। पैदा तो मजदूर, किसान या नौकर ही करता है। यह बात दूसरी है कि मालिक उसे हथिया लेता है। वास्तव में तो मालिक ही मजदूर का पैदा किया धन या नमक खाता है। किसी का कोई काम या सेवा करके यदि मजदूरी या कीमत पाई जाय, तो उसे मजदूरी या कीमत देनेवाले की कृपा नहीं समझा जा सकता। यह परिश्रम का मूल्य है, खैरात नहीं।

की शोषण और हिंसा के तरीक़े पर चलनेवाली मौजूदा व्यवस्था बन्द हो जायगी। परिश्रम करनेवाली श्रेणी के सहयोग के बिना कोई व्यवस्था नहीं चल सकती। समाज का काम फिर से तभी आरम्भ हो सकेगा। जब परिश्रम करनेवाली श्रेणी अपनी शक्ति फिर से समाज के काम में लगाने को तैयार होगी।

परिश्रम करनेवाली श्रेणी के सहयोग और निश्चय के बिना समाज चल नहीं सकता, इसलिये नवीन व्यवस्था उनके निश्चय के अनुसार होगी। यह व्यवस्था एक श्रेणी के दूसरी श्रेणी पर शासन और शोषण की बुराइयों से रहित होगी। इस समाज में सभी को समान रूप से परिश्रम करने का अवसर होगा। परिश्रम करनेवाली जनता की यह व्यवस्था किसी के लिये अन्याय न कर सकेगी। अन्याय करने का कोई साधन भी न रहेगा। समाजवादी व्यवस्था में जनता के राज की ऐसी व्यवस्था का ही अभिप्राय है।

इस ढंग से व्यवस्था बदलने में पैदावार के साधनों पर से किसी की मिल्कियत छीनने का सवाल नहीं उठता। मिल्कियत है क्या? पदार्थों से मनुष्यों का सम्बन्ध ही मिल्कियत है। यह सम्बन्ध समाज की व्यवस्था पर निर्भर करता है। समाज इसे स्वीकार करता है तभी इसे माना जाता है। जब व्यवस्था नये सिरे से बनेगी, तो पदार्थों और साधनों से मनुष्यों के सम्बन्ध भी नये सिरे से बनेंगे। पैदावार के साधन उसी के अधिकार में रहेंगे जो उनका व्यवहार कर सकेगा। उनका उपयोग समाज की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये होगा।

समाज में ऐसी शोषणरहित, श्रेणीरहित व्यवस्था क़ायम हो जाने पर जिसमें देश के प्रत्येक व्यक्ति को जीविका निर्वाह का समान अवसर हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पा सकने का अधिकार हो, समाज के सार्वजनिक और शासन सम्बन्धी कामों के प्रबन्ध में राय देने का हक़ हो, किसी प्रकार का दमन और पराधीनता शेष नहीं रह

सकती। समाजवाद ऐसी अवस्था को ही सत्य और अहिंसा समझता है और उसे सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम से प्राप्त करना चाहता है। यही सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग गांधीवाद के आध्यात्मिक सत्य और अहिंसा के उद्देश्य मे उलझकर निर्जीव शव हो जाता है।

सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग एक ही वस्तु है। समाजवाद इनके द्वारा समाज के लिये नयी परिस्थितियो में नवीन व्यवस्था क़ायम कर विकास और सफलता के मार्ग की अड़चनों को संघर्ष द्वारा दूर करना चाहता है। गाधीवाद मृतक युग की व्यवस्था को मौजूदा परिस्थितियों पर लादकर समाज को गतिहीन कर देना चाहता है ताकि अधिकार और शासन के आसन पर बैठी श्रेणी के क़दम न लड़लड़ायें।

पुरानी व्यवस्था की रक्षा के लिये गाधीवाद की यह पक्षपात पूर्ण अहिंसा जनता की हिंसा है क्योंकि वह हिंसा की व्यवस्था से निकल कर स्वतंत्र और सशक्त बनने का मार्ग समाज के लिये रोक रही है। इसका बहुत स्पष्ट प्रमाण है गाधीवादी कांग्रेस का १९४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन जो बिना किसी निश्चित राष्ट्रीय उद्देश्य के, सरकार की नीति के नैतिक विरोध के नाम पर, राष्ट्र की शक्ति का ख़ून कर रहा है।

गांधीवाद की शवयात्रा

सत्य-अहिंसा का अन्तिम प्रयोग ❀

सन् १९२० से १९४० तक काग्रेस गाधीवादी नीति के नेतृत्व में स्वराज्य के लिये दो दफे सत्याग्रह युद्ध कर चुकी है। सन् १९४० अक्टूबर से एक तीसरा सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा है। गाधीवादी राजनीति का स्रोत आध्यात्मिकता और ईश्वर की प्रेरणा मे रहता है इसलिये सासारिक बुद्धि की पकड मे वह ज़रा कठिनाई से आ सकता है। सन् १९४० से चलनेवाला यह आन्दोलन शायद गाधीवाद की बहुत गहरी नीति है, इसलिये वह समझ से और भी अधिक दूर चला गया है। न केवल इस आन्दोलन का ढंग विचित्र है, बल्कि इसका उद्देश्य भी अद्भुत है।

इस आन्दोलन की विशेषता समझने के लिये आन्दोलन आरम्भ होने की परिस्थितियो को याद कर लेना उपयोगी होगा। कुछ गाधी-वादी राजनीतिज्ञो का कहना है कि स्वराज्य के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन समाप्त कभी भी नही हुआ, वह अवस्था के अनुसार केवल रूप बदलता रहा है। सत्याग्रह कभी स्थगित हो जाता है और कभी वह जारी हो जाता है। हम यहाँ १९४० अक्टूबर से जारी हो जाने वाले सत्याग्रह का ही ज़िक्र कर रहे हैं।

सन् १९३७ में काग्रेस के मंत्री पद स्वीकार कर लेने के बाद सत्याग्रह स्थगित हो गया था और आन्दोलन ने गाधीवादी राजनीति के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम का रूप ले लिया था। काग्रेसी सरकारो

❀ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन सितम्बर १९४० में महात्मा गाधी ने कहा था कि यह अन्तिम सत्याग्रह आन्दोलन होगा।

के ज़माने में, जब कांग्रेस के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार की आधीनता में प्रान्तों का शासन चला कर स्वराज्य पाने का यत्न कर रहे थे, देश की जनता और सर्वसाधारण कांग्रेसी संतुष्ट नहीं थे। कांग्रेस के नेताओं से वे लगातार आन्दोलन को आगे बढ़ाकर जनता के जीवन की कठिनाइयों को दूर करनेवाले कार्यक्रम को अमल में लाने की माँग कर रहे थे। त्रिपुरी कांग्रेस के अधिवेशनों में यह बात ख़ूब स्पष्ट हो गई थी।

कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में और ख़ासकर रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस नेताओं ने जनता को यह भरोसा दिलाया कि पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आज़ादी ही कांग्रेस का उद्देश्य है, कांग्रेस जनता को उस उद्देश्य की ओर अवश्य ले जायगी। जनता को उस महान कार्य के लिये तैयार हो जाना चाहिये। नेताओं के विचार में जनता स्वराज्य के युद्ध के लिये तैयार नहीं थी और जनता समझ रही थी कि नेता स्वराज्य के लिये युद्ध को टाल रहे हैं। त्रिपुरी और रामगढ़ में प्रस्ताव पास करके जनता को विश्वास दिलाया गया कि कांग्रेस भारत की जनता के लिये स्वराज्य प्राप्त करने के उद्देश्य और मार्ग पर दृढ़ है। पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी वस्तु को वह स्वीकार नहीं करेगी। शासन की उस व्यवस्था से जिसके कारण देश के सर्वसाधारण का जीवन दूभर हो रहा है, वह कभी सहयोग नहीं कर सकती। शोषण की साम्राज्यशाही व्यवस्था से अपना विरोध दिखाने के लिये साम्राज्यशाही नीति के विरोध की और किसी भी साम्राज्यशाही युद्ध में देश के भाग न लेने की प्रतिज्ञा कांग्रेस ने दोहराई।

जनता में अपनी असह्य अवस्था के प्रति इतना असंतोष था कि कांग्रेस की वैधानिक और धीमी नीति के विरोध में प्रदर्शन होने लगे। कांग्रेस के अधिवेशन के दरवाज़े पर ही 'समझौता-विरोधी-सम्मेलन' भी हुआ। कांग्रेस के नेताओं के विचार में समझौता विरोधी सम्मेलन

कुछ लोगों की शरारत ही जँची। यहाँ हम समझौता विरोधी सम्मेलन करनेवालो और कांग्रेसी नेताओं की ईमानदारी की तुलना नहीं कर रहे। समझौता विरोधी सम्मेलन के उद्देश्यों की तह में चाहे जो कुछ रहा हो, परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता, कि चोटी के सभी लीडरो के विरोध के बावजूद जनता की सहानुभूति की दृष्टि से समझौता विरोधी सम्मेलन असफल नहीं रहा। जनता कूटनीति नही समझ सकती। किसी हद तक वह अदूरदर्शी भी हो सकती है और अवसरवादियो के धोखे में भी फँस सकती है परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि जनता अपनी हालत से बेचैन होकर परिवर्तन के लिये अधिक उत्साह पूर्ण तरीक़े से क़दम उठाने के लिये तड़प रही थी। कांग्रेस के समाजवादी और कम्यूनिस्ट लोगों ने संस्था के रूप में समझौता विरोधी सम्मेलन मे सहयोग नहीं दिया। वे कांग्रेस के मुक़ाबिले में दूसरी प्रतिद्वन्दी संस्था बना देना उचित नहीं समझते थे। वे महात्मा गांधी और गांधीवादी नेताओं की छत्रछाया मे चलनेवाली कांग्रेस के साथ ही रहे, परन्तु इस कांग्रेस में उन्होंने उसी कार्यक्रम पर ज़ोर दिया जिसका माँग समझौता विरोधी कानफ्रेंस करनेवाला दल कर रहा था।

रामगढ़ कांग्रेस का अधिवेशन संक्षेप में स्वतंत्रता के लिये जनता के नये उत्साह और दृढ़ निश्चय से सत्याग्रह युद्ध आरम्भ करने का निश्चय था परन्तु इस निश्चय में और बीस वर्ष पहले आरम्भ किये गये सत्याग्रह युद्ध मे एक भारी अन्तर था। बीस वर्ष पूर्व नेताओं ने जनता को युद्ध के लिये पुकारा था। इस समय जनता नेताओं पर युद्ध आरम्भ करने के लिये ज़ोर डाल रही थी। कांग्रेस की सर्वसाधारण जनता और कांग्रेस पर अधिकार रखनेवाली श्रेणी का भेद बढ़ता जा रहा था।

कांग्रेस के नेता इस समय विचित्र परिस्थिति मे थे। साम्राज्यशाही

युद्धों से असहयोग करने के प्रस्ताव कांग्रेस पिछले कई वर्ष से लगातार पास करती आ रही थी। १६३६ सितम्बर में युद्ध आरम्भ हुआ और ब्रिटेन ने भारत को भी इस युद्ध का हिस्सेदार बना दिया। कांग्रेस के नेतृत्व के सामने प्रश्न आया, वे क्या करे ? भारत के ग्यारह प्रान्तों में से नौ प्रान्तों पर कांग्रेस मंत्री मण्डलों का शासन था। शासन की जिम्मे-वारी सिर पर होने के कारण वे इस युद्ध में सहयोग दें, या कांग्रेस के प्रस्तावों के अनुसार असहयोग करें ? इस प्रश्न को दो दृष्टिकोणों से देखना ज़रूरी था, एक तो यह कि कांग्रेस की नीति का जनता पर क्या प्रभाव पड़ता है और दूसरा शासन के अधिकार किस प्रकार बढ़ाये जा सकते हैं।

कांग्रेस का रवैया सदा रहा है, जनता की पुकार का बोझ सरकार पर डालकर सुधारों की मॉग करना। इस नीति से लाभ उठाने के लिये यह मौक़ा बहुत अनुकूल जान पड़ा। कांग्रेस चुनाओं के मैदान में अपनी शक्ति ब्रिटिश सरकार को दिखा चुकी थी। भारत की जनता के नाम, वायसराय की सहायता की अपीलों से कांग्रेस यह भी ख़याल कर रही थी, कि उनके असहयोग का प्रभाव इस समय बहुत पड़ेगा। इस बारे में भी सन्देह न था कि जनता आन्दोलन के लिये तैयार थी। कांग्रेस ने जनता का विश्वास अपने प्रति दृढ़ बनाये रखने के लिये और सरकार पर दबाव डालने के लिये नवम्बर १६३६ में सरकार से असहयोग कर दिया।

इस असहयोग का कारण जनता को बताया गया कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य—जनता के राज-के लिये लड़ेगी। साम्राज्यशाही युद्ध मे वह देश की शक्ति वलिदान नहीं होने देगी। ब्रिटिश सरकार के सामने कारण रखा गया कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध मे जनता के प्रति-निधियो, यानी कांग्रेस की राय के विना ही घसीट लिया। यह भारत का अपमान है। भारत युद्ध में सहयोग स्वयम् अपने निश्चय, अपनी

इच्छा और लाभ के विचार से ही दे सकता है। ब्रिटेन से युद्ध का उद्देश्य स्पष्ट करने के लिये कहा गया। माँग पेश की गई कि ब्रिटेन भारत को स्वराज्य दे दे तो यह मान लिया जायगा कि यह युद्ध साम्राज्यशाही युद्ध नहीं और फिर भारत अपने जन-धन से युद्ध मे सहायता करेगा।

आन्दोलन को टालने का यत्न

काग्रेसी मंत्री मण्डलों के इस्तीफे दे देने के बाद ग्यारह मास तक आन्दोलन की पैतराबाज़ी होती रही। जनता को सत्याग्रह द्वारा मृत्यु का सामना कर स्वराज्य की लडाई लड़ने के लिये तैयार होने को कहा गया और काग्रेसी नेता सरकार से युद्ध मे भारत की सहायता का भाव तोल करते रहे। महात्मा गाधी काग्रेस के दूत बनकर वायसराय से मिलते रहे। काग्रेस के नेताओ को आशा थी कि उनकी माँगें सरकार मंजूर कर लेगी। इसका मतलब स्पष्ट था कि वे भारत की स्वतन्त्रता के लिये लडाई की तैयारी नहीं कर रहे थे, माँग रहे थे कुछ और अधिकार।

जून १९४० मे काग्रेस ने अपनी कार्यकारिणी (वर्किंग कमेटी) समिति के प्रस्ताव मे सरकार को यह इशारा दिया कि स्वराज्य के मामले में काग्रेस वेशक अहिंसा और निशस्त्र आन्दोलन के सिवा और किसी उपाय पर विश्वास नहीं रखती ; परन्तु बाहरी आक्रमण के मामले मे इस नीति का उपयोग ज़रूरी नहीं अर्थात् काग्रेस की सहायता का मूल्य मिलने पर वह अपना सहयोग युद्ध मे दे सकती है।

काग्रेस का यह प्रस्ताव गाधीवाद की अहिंसा को उद्देश्य मानने की नीति के विरुद्ध था। परन्तु इस समय काग्रेस का नेतृत्व करने-वाले दल के सामने सरकार से समझौता करने का प्रश्न मुख्य था।

राजनीति में आध्यात्म और धर्म को मिला देने की कठिनाई इस समय काग्रेस के नेताओं के सामने आई। वे युद्ध की स्थिति से लाभ उठाना चाहते थे परन्तु महात्मा गाधी अहिंसा के पालन पर डटे थे। अपना काम गाधीवाद से निकलता न देख उन्होंने गाधीवादी नीति को अमल न आने योग्य आदर्श बताकर एक ओर ढकेल दिया परन्तु महात्मा गाधी की प्रशंसा अवतारी पुरुष के रूप में भी अवश्य कर दी। महात्मा गांधी को काग्रेस की यह अनीति पसन्द नहीं आई। उन्होने जुलाई के प्रथम सप्ताह के हरिजन मे काग्रेस के नेताओं पर पद ग्रहण के लोभ के छींटे कसे। इतना होने पर भी गाधीवाद और काग्रेस का पूँजीवाद दोनों एक दूसरे की सहायता बिना नही चल सकते थे इसलिये जून के अन्त मे काग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से महात्मा गाधी को वायसराय से मुलाक़ात करनी ही पड़ी।*

सरकार पर दबाव डालने और जनता को संतुष्ट करने के लिये स्वराज्य प्राप्ति के लिये आन्दोलन चलाने की बाते ज़ोर शोर से की जा रही थी। आन्दोलन की बातें तो की जा रही थीं परन्तु आन्दोलन चलने पर वह काग्रेस की नेताशाही के हाथ में नही रहेगा, यह बात रामगढ़ के प्रदर्शनों से स्पष्ट हो चुकी थी। आन्दोलन चलने पर शासन के अधिकार हथियाने का जो मौक़ा आया था उससे लाभ उठाने की आशा भी बिलकुल छोड देनी पडती। आन्दोलन समाप्ति के बाद उस भूचाल से क्या अवस्था पैदा होती, इसे कौन बता सकता था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि महात्मा गाधी और गाधीवाद काग्रेसी

* इस मुलाक़ात में यदि महात्मा गाधी ने सत्य और हृदय की निष्कपटता से काम लिया होगा तो वायसराय के सामने महात्मा गांधी और काग्रेस की वर्किंग कमेटी के भेद भी ज़ाहिर हो गये होंगे। वायसराय साहब को यह समझने में कुछ भी दिक़त न हुई होगी कि वास्तविक आन्दोलन का कुछ भय नहीं।

नेताओं की रक्षा जनता से करने के लिये आगे नहीं बढ़ रहे थे। ऐसी अवस्था में आन्दोलन के बजाय सरकार से समझौते का मार्ग ही कांग्रेस नेताशाही को ठीक जँचा। समझौते को आसान बनाने के लिये कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने जुलाई के प्रथम सप्ताह मे अपनी माँग को और घटाया। वर्किंग कमेटी की माँग थी—"पूर्ण स्वतत्रता के वायदे की घोषणा तो तत्काल ही हो जानी चाहिए। सरकार का काम जैसे चल रहा है चले। केवल केन्द्र में एक अस्थायी सरकार जनता के प्रतिनिधियों की सरकार के रूप में स्थापित हो जाय *। इस केन्द्रीय सरकार के साथ प्रान्तीय सरकारो का सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। ऐसा हो जाने पर कांग्रेस युद्ध मे ब्रिटेन की सहायता के लिये पूरे तौर पर जुट पड़ेगी।" वर्किंग कमेटी के दिल्ली और पूना के प्रस्तावो में यही बात थी।

आन्दोलन गाधीवादी नीति को भी मंजूर नहीं था परन्तु जिस अहिंसा, धर्म और नैतिकता के जय-जयकार से गाधीवाद ने जनता पर कब्ज़ा करने में सफलता प्राप्त की थी, कांग्रेस नेताशाही (कांग्रेस हाईकमाण्ड) द्वारा अधिकारो के लिये उस अहिंसा को यों बेच दिया जाना गाधीवाद को सह्य न था। अहिंसा और प्रेम की प्रतिष्ठा के लिये इस समय गाधीवाद ब्रिटिश सरकार के प्रति सहानुभूति दिखाना चाहता था अधिकारों की माँग करना नहीं। कांग्रेस नेताशाही बिना कुछ पाये अपनी सहानुभूति देने को तैयार न थी इसलिये दोनो में 'चख-चख' हो ही गई। गाधीवाद ने कांग्रेस की नीति को पद अधिकार का लोभ बताया और परम गाधीवादियों को कांग्रेस से इस्तीफे देकर

* इस अस्थायी सरकार का मतलब था, केन्द्र में एक कमेटी की नियुक्ति जिसमें कांग्रेस का प्राधान्य रहे। वायसराय की कौंसिल कांग्रेस की माँग को पूरा कर सकती है यदि उसमें कांग्रेस का प्राधान्य हो परन्तु वायसराय कांग्रेस की शक्ति को इतना अधिक नहीं बढा देना चाहते।

बाहर निकल आने के लिये कहा। महात्मा गांधी ने फैसला दिया कि कांग्रेस अहिंसा के परम धर्म से गिर रही है। मानों, कांग्रेस का धर्म स्वराज्य या शासन अधिकार पाना नहीं, अहिंसा की साधना ही था †।

गांधीवाद को उनका प्रयोजन सिद्ध करने के बजाय स्वयम् उन पर आक्रमण करते देख कांग्रेस नेताशाही तिलमिला उठी। अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन में (२७-२८ जुलाई १९४०) जनता के सामने गांधीवाद की अव्यवहारिकता की खूब कलई खोली गई। श्री भूलाभाई देसाई ने बताया—कांग्रेस अहिंसा से नहीं गिर रही बल्कि महात्मा गांधी ही ऊपर चढे चले जा रहे हैं। अहिंसा में हमारा विश्वास पहले का सा ही है परन्तु उसे हम संसार की वर्तमान दशा के साथ मिलाकर देखना चाहते हैं.......यहीं हमारा महात्मा गांधी से मतभेद है। कांग्रेस राजनैतिक संस्था है। अहिंसा का प्रचार करना उसका उद्देश्य नहीं। जिस बात को पूरा करने का हमें स्वयं विश्वास नहीं, उसके लिये वायदा करना गहरी बेइमानी होगी।

श्री राजगोपालाचार्य ने स्थिति यों स्पष्ट की—शुद्ध अहिंसावादियों से मेरा कहना है कि अगर आप मानते हैं कि बिना सेना के राज्य संचालन किया जा सकता है, तो आप भारी ग़लती करते हैं। खुद महात्माजी अब तक क्या करते रहे हैं? रंगरूट भरती का आन्दोलन उठाने के समय (१९१४) क्या अहिंसा में उनकी निष्ठा कुछ कम थी? हिन्दुस्तान को तुरंत पूर्ण स्वाधीन बनाना असाध्य कार्य हो सकता है। यही सोचकर हमने केन्द्र में तुरंत राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की मॉग पेश की है। वह मंजूर करली जाय, तो हमें ब्रिटेन की

† यदि महात्मा गांधी के विचार में कांग्रेस अब तक अहिंसा की साधना आदर्श रूप में करती आ रही थी, तो उनके स्वयम् कांग्रेस के मेम्बर न बनने का कारण क्या था?

सहायता करनी चाहिये।.........मैं इस प्रश्न पर व्यवहारिक दृष्टि से विचार करना चाहता हूँ। हम स्वतंत्रता चाहते हैं।.................हमें देखना होगा कि इस कार्यवाही से हम आगे बढ़ सकते हैं या नहीं १।.........इसलिये ब्रिटेन से यह कहने में कोई असगति नहीं कि अगर तुम हमारी माँग पूरी कर दो, तो हम भारत के जन-धन से तुम्हारी सहायता करेंगे। परिस्थिति बदल जाने के कारण हमें अपनी माँग नये और निश्चित रूप में पेश करनी पडी है २। श्री राजगोपाला-चार्य ने यह भी याद दिलाया कि कराची कांग्रेस में महात्मा गाधी ने भारत की जनता के लिये हथियार रखने के अधिकार की माँग की थी, उसका अहिंसा से क्या सम्बन्ध था?

सरदार पटेल इससे भी अधिक साफ बात कह गये—"लड़ाई शुरू होने पर जब गाधीजी पहले वायसराय से मिले, तो यह आश्वासन दे आये कि मेरा बस चले तो इस सकट के समय ब्रिटेन को शर्त कराये बिना ही मदद दिलाऊँ ३।...... गाधीजी सब कुछ कर सकते हैं। उनकी बराबरी हम नहीं कर सकते।... स्वाधीन हुए बिना यदि हम ब्रिटेन की मदद करने लग जायँ, तो हमारी पराधीनता का बन्धन कसने के लिये हमारी ही शक्ति का उपयोग होगा।....हम ऐसे मूर्ख नहीं।"

कांग्रेस के प्रधान मौलाना अब्दुलक़लाम आज़ाद ने कांग्रेस का निश्चय को प्रकट करने के लिये कहा—"कांग्रेस ने महात्मा गाधी का नेतृत्व क़ायम रखने के लिये पूरी कोशिश की लेकिन फ़िलहाल वह कामयाब नहीं हुई। अगर अगली लड़ाई में कांग्रेस को महात्मा गाधी

१—अभिप्राय है ब्रिटेन को सहायता देकर हम स्वराज्य पा सकते हैं या नहीं? २—इसका अर्थ यह हो सकता है कि यदि युद्ध आरम्भ न होता तो आन्दोलन की परिस्थिति न आती। ३—यह आश्वासन अहिंसा पालन के लिये सिद्धान्त रूप से युद्ध के विरोध के कहाँ तक अनुकूल है?

का नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका और अगर ज़रूरी हुआ, तो ऐसी हालत मे काग्रेस नेतृत्व की जिम्मेदारी स्वयं सम्भालेगी।" *

मौलाना आज़ाद ने महात्मा गाधी के नेतृत्व के बिना ही लड़ाई चलाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु शायद उनका अभिप्राय सरकार से समझौते से ही था। लड़ाई या लड़ाई का तमाशा रचने की आवश्यकता पड़ते ही फिर महात्मा गाधी को डिक्टेटर बनाना पड़ा क्योकि इसके बिना जनता को प्रभावित नहीं किया जा सकता था। अलबत्ता, समझौता करने के लिये काग्रेस महात्मा गाधी की सहायता बिना भी तैयार थी। काग्रेस की यह सब तजवीज़े सरकार ने नामजूर कर दीं। इसका कारण एक हद तक यह था कि वायसराय ग़ैरकाग्रेसी दलों के सहयोग पर भरोसा कर सकते थे। इलावा इसके चतुर ब्रिटिश नीतिज्ञ जनता की माँगो और काग्रेस नेताशाही की मॉगों मे अन्तर देख रहे थे। इतना ही नही, काग्रेस की नेताशाही और महात्मा गांधी का भेद भी उनके सामने प्रकट था। फिर आन्दोलन के भय का अर्थ ही क्या था?

काग्रेस की सहायता और समझौते की सब तजवीज़े ठुकरा दी जाने के बाद भी काग्रेस नेताशाही को आन्दोलन मंज़ूर न था। उसमें दो भय थे। प्रथम तो आन्दोलन का रूप इस प्रकार का हो जाने का भय था कि काग्रेस की नेताशाही का नेतृत्व उसमें क़ायम नही रह सकता था। दूसरे भारत की पूँजीपति श्रेणी युद्ध से आर्थिक लाभ उठाने के मौक़े को आन्दोलन द्वारा बरबाद नहीं कर देना चाहती थी। परन्तु आन्दोलन के वायदों से जिस जनता को काग्रेस की सहायक और समर्थक बनाया गया था, उसे किस प्रकार संतुष्ट रखा जा सकता था?

---

* अहिंसा के सम्बन्ध में काग्रेस के प्रमुख नेताओं के यह विचार सिद्धान्त रूप से श्री के० एम० मुन्शी के विचारों से भिन्न नहीं परन्तु महात्मा गाधी ने इन्हें काग्रेस से इस्तीफ़ा देने की सलाह नहीं दी।

कांग्रेस का जीवन ख़तरे में पड गया। आन्दोलन चलाये बिना ही कांग्रेस की प्रतिष्ठा की रक्षा करना ज़रूरी था। जनता पर कांग्रेस का प्रभाव रखना आवश्यक था। इसके लिये कांग्रेस नेताशाही ने फिर महात्मा गाधी की शरण ली।

महात्मा गाधी समझौते की नई तजवीज़ लेकर वायसराय के पास पहुँचे। इस तजवीज़ में पूर्ण स्वराज्य और शासन के अधिकारों की सब माँगे रद्द हो चुकी थीं। बस एक ही माँग' शेष रह गई थी—"किसी प्रकार कांग्रेस की प्राण रक्षा और मान रक्षा हो।" माँग थी कि कांग्रेस का यह अधिकार स्वीकार कर लिया जाय कि 'अहिंसा के प्रचार के लिये उसे युद्ध विरोधी प्रचार करने का अधिकार' है। 'युद्ध विरोधी प्रचार का अधिकार' युद्ध का विरोध करने के लिये नहीं, केवल एक अधिकार प्राप्त कर कांग्रेस की प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिये। इस बात का निश्चय सरकार को दिलाया गया कि कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार के प्रति सहानुभूति है। ब्रिटेन इस समय युद्ध के संकट में फँसा है इसलिये फ़िलहाल स्वराज्य की माँग भी मुल्तवी है। युद्ध के समय ब्रिटेन की राह मे कोई अड़चन डालना भी कांग्रेस उचित नहीं समझती। ऐसी अवस्था में युद्ध विरोधी प्रचार का प्रयोजन ही क्या? और ब्रिटिश सरकार को ही कांग्रेस के युद्ध विरोधी प्रचार के विरुद्ध क्या शिक़ायत हो सकती है?

समझौते से निराश होकर कांग्रेस की नेताशाही ने महात्मा गाधी की अव्यावहारिक अहिंसा के सिद्धात को फिरसे अपना लिया। २ अगस्त के दिन महात्माजी से मुलाक़ात कर मौलाना आज़ाद ने एलान किया कि यदि सरकार ने कांग्रेस की तजवीज़ को नामंज़ूर कर दिया, तो कांग्रेस फिर से महात्मा गाधी के नेतृत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करेगी और जो कोई निश्चय होगा, वह महात्मा गाधी के आदेश के अनुसार ही होगा।*

* इस एलान से यह बात बिल्कुल साफ़ हो जाती है कि कांग्रेस नेता

२७ और २८ जुलाई को पूना में जिन कांग्रेसी नेताओं ने सरकार से समझौता हो जाने की आशा में गाधीवादी नीति की अव्यवहारिकता की पोल खोली थी, उन्हीं नेताओं ने आन्दोलन चलाने के लिये मज़बूर होकर १५ सितम्बर, ४०, के अखिल भारतीय कांग्रेस के अधि- वेशन में जनता को समझाया कि एक मात्र महात्मा गाधी ही उन्हे स्वतंत्रता की ओर ले जा सकते हैं। सरदार पटेल ने जनता से अपील की कि वे एकमत से प्रस्ताव पास करें और दुनियाँ को गाधीजी के प्रति अपनी भक्ति दिखा दे। उन्होंने यह भी विश्वाम दिलाया कि यदि सन् १९२० और १९३० जैसा वातावरण होता, तो महात्मा गाधी सार्वजनिक आन्दोलन कर देते। १९२० और १९३० जैसे वातावरण से अभिप्राय क्या था, समझना कठिन है। पहले की अपेक्षा अब अन्तर यह आ गया है कि जनता की अवस्था अधिक असंतोषजनक हो गई है और जनता में जाग्रति भी अधिक है।

अहिंसा प्रचार का युद्ध विरोधी आन्दोलन आरम्भ करने से पहले महात्मा गाधी एक दफे फिर वायसराय के पास पहुँचे। यदि आन्दोलन आरम्भ करना ही था, तो उसके लिये वायसराय से मिलने की क्या ज़रूरत हो सकती थी? कांग्रेस जो कुछ करती, सरकार के सामने स्वयम् ही आ जाता। वायसराय से मिलने का प्रयोजन यही हो सकता था कि ब्रिटिश सरकार अहिंसा प्रचार के नाम पर कांग्रेस का 'युद्ध विरोध करने के अधिकार' सरकारी तौर पर स्वीकार कर ले, कांग्रेस की प्रतिष्ठा जनता की नज़रों में बच जाय और आन्दोलन को टाल दिया जा सके। अगर सरकार कांग्रेस की यह प्रार्थना मान लेती, तो इससे कांग्रेस अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के विश्वास में युद्ध विरोध का प्रचार करने की मुसीबत से बच जाती। इससे न तो युद्ध बन्द हो जाता और न युद्ध में

शाही गांधीवाद में विश्वास नहीं रखती बल्कि अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये उसे हथियार के तौर पर उपयोग में लाती है।

होनेवाली हिंसा ही दूर हो जाती। चारो सिरे मजबूर होकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस को आन्दोलन का निश्चय करना पडा। इस आन्दोलन के सम्बन्ध में यह बातें ध्यान मे रखना ज़रूरी है:—

आर्थिक परिस्थितियों के कारण विवश होकर जनता जीवन की कठिनाइयो को दूर करने के लिये आन्दोलन का तक़ाज़ा कर रही थी। यदि काग्रेस आन्दोलन आरम्भ न करती तो जनता का असंतोष अपने लिये आन्दोलन की राह स्वयम् ढूँढ़ लेता। इस प्रकार के आन्दोलन किसानों के असंतोष के रूप में और मज़दूरों की आर्थिक स्थिति के सुधार की माँग के रूप में जगह-जगह उठ रहे थे। किसी सार्वजनिक राजनैतिक आन्दोलन के आरम्भ होजाने पर शोषित श्रेणियो के स्थानीय आन्दोलन राजनैतिक रूप लेकर बहुत प्रबल हो जाते। ऐसे आन्दोलन काग्रेस की नेताशाही और गाधीवाद को मज़ूर नहीं थे। काग्रेस के बिल्कुल चुप पड़े रहने से जनता का विश्वास काग्रेस पर न रहता। देश की पूँजीपति श्रेणी युद्ध की अवस्था मे आर्थिक लाभ के अवसर को आन्दोलन के पचड़े में नहीं खो देना चाहती। शोषितों में श्रेणी भावना पैदा हो जाने के कारण अपने हितों और अधिकारों के अनुकूल स्व-राज्य का एक रूप उन लोगों की कल्पना मे समा गया है जो काग्रेस की नेताशाही और गाधीवाद के स्वराज्य की कल्पना से भिन्न है। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए एक ऐसे कार्यक्रम की ज़रूरत थी जो सार्वजनिक राजनैतिक आन्दोलन के कारण पैदा होनेवाली आशंकाओं को दूर रखकर, काग्रेस के नेतृत्व को क़ायम रखे।

विचित्र राजनैतिक आन्दोलन

आन्दोलन से बच निकलने का कोई भी उपाय न देखकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे एक विचित्र राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन का नाम है 'व्यक्तिगत सत्याग्रह'। आन्दोलन एक सामू-

हिक कार्य है। किसी व्यक्तिगत के कार्य को आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। जिस आन्दोलन में बीस-पच्चीस हज़ार व्यक्ति भाग लें, उसे व्यक्तिगत किस तरह समझा जा सकता है? काग्रेस के इस सत्याग्रह-आन्दोलन को व्यक्तिगत आन्दोलन का नाम देने का प्रयोजन है, उसे आम जनता के सम्पर्क से दूर रखकर कुछ चुने हुए व्यक्तियों के क्षेत्र में सीमित रखने का अभिप्राय? ऐसा करने का कारण यही है कि आन्दोलन जनता की स्वाभाविक माँग को पेश नहीं करता, बल्कि एक बनावटी सवाल को पेश करता है यह भय है कि मौक़ा पाते ही जनता का आन्दोलन इस ढोंग को दबाकर वास्तविकता को सामने रख देगी। यदि आन्दोलन से जनता का हित पूरा हो रहा हो, वह उसके हृदय से उठा हो, तो जनता का अविश्वास करने का क्या कारण हो सकता है?

मौजूदा आन्दोलन में काग्रेस की गाधीवादी नेताशाही का जनता में अविश्वास होने का कारण स्पष्ट है। काग्रेस नेताशाही (काग्रेस हाई कमाण्ड) खूब जानती है कि जनता की माँग जीवन निर्वाह का अवसर प्राप्त करने की है। जनता चाहती है, जीवन रक्षा का अधिकार। महात्मा गाधी इस अधिकार से अधिक महत्व युद्ध के विरोध के अधिकार को देते हैं। मानो, प्राण रक्षा न कर सकने पर भी जनता युद्ध का विरोध कर सकेगी। किसी की ज़ुबान पकडी नहीं जा सकती *। कह दिया जा सकता है, युद्ध विरोध का अधिकार ही जनता को जीवन का अधिकार दिला सकता है। यदि वास्तव में ही अहिंसा की रक्षा के लिये युद्ध विरोध का अधिकार जनता को जीवन का अधिकार दिलाने के लिये है, तो इसे सीधे शब्दों में जीवन के अधिकार का आन्दोलन या स्वराज्य का आन्दोलन ही क्यो न कहा जाय? नाम बदलकर टट्टी

* विशेषकर उस अवस्था में जबकि अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये देश के पूँजीपतियों के प्रेस गाधीवादी नीति के नक्कारे बजा रहे हों।

की आड में शिकार खेलकर धोखा किसको दिया जा रहा है ? ब्रिटिश सरकार तो इस जाल में फँसकर युद्ध विरोध के अधिकार के रूप में स्वराज्य दे देने से रही और भारत की जनता की दृष्टि में अहिंसा की प्रतिष्ठा के इस आन्दोलन से अधिक महत्व अपनी हिंसा न होने देने के उपाय का है।

इस देश मे ऐसे राजनीतिज्ञों की भी कमी नहीं जो जनता को समझाना चाहते हैं कि युद्ध विरोध के आन्दोलन का परिणाम स्वराज्य होगा। इसमें भी सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन मे जेल जानेवाले ६६'६ प्रतिशत सत्याग्रही जेल स्वराज्य की आशा से ही जा रहे हैं। परन्तु महात्मा गाधी एक नहीं बीस दफे इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि आन्दोलन केवल युद्ध का विरोध करने के अधिकार के लिये है, स्वराज्य के लिये नहीं आख़िर इस ग़लतफहमी की जिम्मेवारी है किस पर ?

दोष किसका समझा जाय ? स्वयं महात्मा गाधी ही अपने एक ही व्याख्यान में दोनों बातें कह जाते हैं। सितम्बर १६४० मे बम्बई में होनेवाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी में दिये अपने व्याख्यान में महात्मा गाधी ने यह दोनो ही बातें कहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह आन्दोलन केवल युद्ध का विरोध करने का अधिकार माँगता है, जो भाषण की स्वतत्रता है। इसके अतिरिक्त हमे ब्रिटिश सरकार को किसी परेशानी मे नहीं डालना। स्वराज्य माँगने का यह अवसर नहीं, क्योंकि ब्रिटिश सरकार स्वयं मुसीबत मे है.........। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यह आन्दोलन स्वराज्य के मार्ग पर एक बड़ा क़दम है.........। इस बात से जनता क्या समझे ? महात्मा गाधी के बात करने के ढंग के कारण उनके भक्त श्रद्धा से कहा करते हैं—महात्माजी की बात को समझ सकना आसान काम नहीं। जो लोग कुछ न समझ सकने से संतुष्ट हो सकते हैं, उनके लिये तो यह बहुत ठीक है परन्तु जो समझना चाहते हैं, उनकी तो मुसीबत है।

समझ का तरीक़ा स्वयं महात्मा गाधी को भी अधिक पसन्द नहीं। समझ और दलील की अपेक्षा वे विश्वास पर ही अधिक भरोसा रखते हैं, इसीलिये वे काग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन पर अपने सिद्धान्तो के विश्वास का चौखटा चढाने का यत्न करते रहते हैं। अहिसा और चर्खे को यदि कोई केवल अनुशासन के ढंग पर स्वीकार करना चाहे, तो महात्मा गांधी को उससे तसल्ली नही होती। वे उसे विश्वास के रूप में ही भारतवासियों के दिमाग़ मे ठूस देना चाहते हैं। यहाँ तक कि 'ईश्वर विश्वास' जैसे नितान्त साम्प्रदायिक विषय को भी सत्याग्रह के राजनैतिक आन्दोलन के लिये आवश्यक ठहरा दिया गया। इन सब बातों पर जिन्हे आपत्ति हो, जो गाधीवाद के सिद्धान्तो को धर्म विश्वास के रूप मे स्वीकार करना न चाहे, उनके लिये महात्मा गाधी की सलाह है कि वे काग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन के अखाड़े से बाहर खड़े होकर गाधीवादी राजनीति क़ी आध्यात्मिक कलाबाज़ी का नतीजा देखा करें। वे कहते हैं, हमें गुणियों की आवश्यकता है, सख्या की नही। महात्मा गाधी और गाधीवाद का यह साम्प्रदायिक अनुशासन गाधीवाद की शुद्धता के लिये सहायक हो सकता है परन्तु भारत के राष्ट्रीय राजनैतिक सगठन पर इसका घातक परिणाम हो रहा है। अपने उद्देश्य और कार्यक्रम के क्षेत्र मे काग्रेस गाधीवाद पर कुर्बान होकर समाप्त होती जा रही है।

आन्दोलन का उद्देश्य

राष्ट्रीय काग्रेस देश की राजनैतिक संस्था है। भारत की स्वतंत्रता इसका राजनैतिक उद्देश्य है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये ही काग्रेस किसी नीति या कार्यक्रम को अपना सकती है। महात्मा गाधी ने काग्रेस के सामने अपनी नीति काग्रेस का राजनैतिक उद्देश्य प्राप्त करने

के साधन के स्वरूप मे ही पेश की थी परन्तु शनैः-शनैः काग्रेस की शक्ति गाधीवादी नीति का प्रचार करने मे ही ख़र्च होने लगी। गाधीवाद मुख्य और काग्रेस गौण बन गई। इतना ही नहीं, काग्रेस का राजनैतिक उद्देश्य, स्वराज्य भी गाधीवाद के आदर्श और उद्देश्य पर कुर्बान हो गया। सन् १६४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह इस बात का प्रमाण है।

इस आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना या जनता के लिये जीवनरक्षा का अवसर और अधिकार प्राप्त करना नहीं, बल्कि ससार मे गाधीवादी अहिंसा का ढिंढोरा पीटना है। मौजूदा व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन ने काग्रेस को जनता की राजनैतिक उन्नति और मुक्ति का साधन न रहने देकर गाधीवादी सत्य-अहिंसा के प्रयोग का साधन बना दिया है।

काग्रेस से हमारा अभिप्राय है काग्रेस की आम जनता से। काग्रेस की नेताशाही और काग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली मालिक श्रेणी से नहीं। यह श्रेणी अपने स्वार्थ को पूरा करने के इलावा किसी दूसरे काम का साधन नही बन सकती। काग्रेस की यह नेताशाही और काग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी अहिंसा प्रचार के लिये काग्रेस का बलिदान होना उसी समय स्वीकार कर सकती है, जब उसका अपना स्वार्थ इससे पूरा हो।

इस आन्दोलन का उद्देश्य बताया जाता है, अहिंसा की रक्षा के लिये युद्ध विरोध का अधिकार परन्तु आन्दोलन का आरम्भ सरकार के ख़िलाफ काग्रेस की जिस शिकायत से हुआ उसमे अहिंसा का चर्चा नहीं शासन के अधिकार बढ़ाने की ही मॉग थी। काग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ने दिल्ली और पूना के अधिवेशनों में केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की मॉंग की थी। इस मॉंग के पूरे होने पर युद्ध मे पूरी-पूरी सहायता देने का वायदा था। यह मॉग पूरी हो जाने पर आन्दोलन न चलता, मॉंग पूरी न होने पर ही आन्दोलन चला। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना या शासन के अधिकारों की मॉंग को अहिंसा नहीं कहा जा सकता। जिस समय

तक कांग्रेस नेताशाही को अपनी माँग स्वीकार हो जाने की आशा थी, उन्होंने गांधीवादी अहिंसा को गैर-अमली और अव्यवहारिक कहकर ठुकरा दिया परन्तु माँग के अस्वीकार हो जाने पर गांधीवादी अहिंसा की स्थापना के लिये जनता को आन्दोलन में जोत दिया गया।

राजनैतिक दृष्टि से यह बात जान पड़ती है कि ब्रिटिश सरकार ने शासन के अधिकारों की हमारी माँग को ठुकरा दिया, इसलिये हम संसार में अहिंसा का प्रचार करने का बीड़ा उठा लें। यह ठीक है कि महात्मा गांधी ने युद्ध के आरम्भ से ही स्वराज्य की माँग को ताक पर रख दिया था और केवल अहिंसा प्रचार की बात कर रहे थे परन्तु कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी तो ऐसा नहीं कर रही थी। वह तो स्पष्ट तौर पर शासन के अधिकार माँग रही थी और उसके मूल्य स्वरूप युद्ध यानी हिंसा में सहायता देने के लिये तैयार थी। कांग्रेस की माँग असफल होने पर आन्दोलन चलना चाहिये था शासन के अधिकार या स्वराज्य की माँग का। जनता के आन्दोलन के लिये तैयार होने पर भी यह आन्दोलन न चला। क्योंकि जनता और नेताओं के स्वराज्य के आदर्श में अन्तर है। लेकिन जनता को वश में कैसे रखा जाता? इसका उपाय करने के लिये मैदान गांधीवाद के हाथ सौंप दिया गया। इस उपाय से ही कांग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी का नेतृत्व बना रह सकता था। जनता बेचारी तो विश्वास की रस्सी में बँधी गूँगी बकरी है। उसे चाहे जिसे सौंप दिया जा सकता है। कभी स्वराज्य के नाम पर शासन-सुधारों का आन्दोलन उससे कराया जा सकता है और कभी वह सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों की आज़माइश के काम आ सकती है।

कोई आन्दोलन व्यक्तिगत उसी अवस्था में समझा जा सकता है जब आन्दोलन में भाग लेनेवाले लोग केवल व्यक्तिगत भावना से आन्दोलन में आयें, आन्दोलन में सहयोग देने के लिये जनता से कोई अपील न की जाय परन्तु इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये लगातार

प्रचार किया गया और किया जा रहा है। जनता को विश्वास दिलाया गया कि आन्दोलन शीघ्र ही स्वराज्य की भारी लड़ाई का रूप ले लेगा। ग़ैर ज़िम्मेवार आदमियो की बात जाने दीजिये, कांग्रेस के प्रधान मौलाना आज़ाद ने ही १३ दिसम्बर १६४० की शाम को इलाहाबाद में एलान किया कि सत्याग्रह शीघ्र ही सार्वजनिक रूप ले लेगा। ऐसी अवस्था में जनता उसे अपना आन्दोलन समझकर उसमे फँसने से कैसे बच सकती थी। अलबत्ता महात्मा गाधी शुरू से ही आन्दोलन के व्यक्तिगत होने की बात कहते रहे परन्तु कांग्रेस के आन्दोलन के विषय में अधिकार से प्रामाणिक बात कौन कह सकता है? जनता किसका विश्वास करे? कांग्रेस के प्रधान का या उस व्यक्ति का जो कांग्रेस का चार आना वाला मेम्बर भी नहीं?.........लेकिन मज़ा यह है कि प्रधान की ही बात ग़लत निकली?

कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी और नेताओ से यह प्रश्न किया जा सकता है कि जुलाई १६४० के प्रथम सप्ताह मे गाधीवादी अहिंसा के जिस आदर्श को उन्होंने अव्यवहारिक ठहराया था, अक्तूबर, १६४० में आकर उसी गाधीवादी अहिंसा के प्रयोग और आज़माइश के लिये उन्होंने कांग्रेस को महात्मा गाधी के हाथ कैसे सौंप दिया? रामगढ़ कांग्रेस में जिन प्रस्तावों को कांग्रेस ने पास किया था, उनका स्पष्ट अर्थ साम्राज्यशाही युद्ध मे किसी प्रकार भी सहायता न देना और पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी विधान या सुधार को स्वीकार न करना था। शर्तों पर सरकार को युद्ध मे सहायता देने के दिल्ली और पूना के प्रस्तावों से उसका क्या सम्बन्ध है? अहिंसा की स्थापना के लिये सत्याग्रह चलाने तथा कांग्रेस के उद्देश्य—पूर्ण स्वतंत्रता मे क्या सम्बन्ध है।

आन्दोलन महात्मा गाधी की तानाशाही मे चल रहा है परन्तु आन्दोलन तो कांग्रेस का ही है। कांग्रेस के उद्देश्य को पूर्ण स्वतंत्रता

की प्राप्ति से बदलकर अहिंसा का प्रचार निश्चित कर देने का अधिकार किसे है? क्या कांग्रेस ने अपने उद्देश्य को बहुमत से बदल लिया है? विपरीत इसके लाहौर सन् १९२९ और बम्बई सन् १९३४ के अधिवेशनों में कांग्रेस अधिक राय से अपने कार्यक्रम में 'वैध और शान्तिमय उपायों' के स्थान में 'सत्य और अहिंसा के उपाय' शब्द जोड़ने से इनकार कर चुकी है।

अहिंसा में कांग्रेस के नेताओं का कितना विश्वास है, इस बात का प्रमाण पूना के अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के एलानों में हम देख चुके हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू इस सिद्धान्त पर कितना विश्वास करते हैं, यह उनके इस एलान से स्पष्ट है कि यदि वे अंग्रेज़ होते तो अपने देश पर आक्रमण होने की अवस्था में वही करते जो अंग्रेज़ जर्मनी के आक्रमण के उत्तर में कर रहे हैं। मौलाना आज़ाद अहिंसा में अपने विश्वास की गहराई यह कहकर प्रकट कर चुके हैं कि भारत पर विदेशी आक्रमण होने पर मैं शत्रु से तलवार लेकर लड़ूँगा। स्वयं महात्मा गांधी का अहिंसा पर पूरा विश्वास है परन्तु वायसराय को यह समझाने का क्या अर्थ था—"यदि मेरा बस चलता तो इस युद्ध में ब्रिटेन को बिना किसी शर्त के भारत से सहायता दिलवाता।" यह सहायता चाहे भारत के जन धन से दी जाती या माला फेरकर और भगवान् से प्रार्थना करके पहुँचाई जाती, हिंसा भरे युद्ध के लिये ही होती।

इससे पहले भी महात्मा गांधी के अहिंसा में विश्वास के उदाहरण हमें मिल चुके हैं। पिछले युद्ध में महात्मा गांधी के रँगरूट भरती कराने की बात का ज़िक्र श्री राजगोपालाचार्य पूना अधिवेशन में कर चुके हैं। दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध के समय और अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध ज़ुलू लोगों के विद्रोह करने पर महात्मा गांधी अहिंसा की रक्षा के लिये स्वयं सेवक दल बनाकर अफ्रीकन-ब्रिटिश-सरकार की हिंसा में सहायता के लिये तैयार थे।

हालाँकि स्वयं उनके अपने विचार के अनुसार न्याय बोअर और ज़ुलू लोगों के पक्ष में ही था परन्तु ब्रिटिश सरकार की सहायता करने से दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को रियायत मिलने की आशा जो थी *! यह है गांधीवाद की क्रियात्मक अहिंसा का रूप, जिसकी स्थापना के सामने भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता का भी कुछ महत्व नहीं रहा।

अहिंसा की स्थापना होनी चाहिए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। योरुप मे होनेवाली हिंसा से हमारा हृदय फटा जाता है परन्तु स्वयम् इस देश मे, जनता से जीवन का अवसर और साधन छीनकर जो हिंसा मौजूदा व्यवस्था मे हो रही है, उसकी फ़िक्र गांधीवाद को नहीं। यदि वास्तव में ही हिंसा का अन्त कर अहिंसा की स्थापना उद्देश्य है तो उसके लिये इस देश मे ही बहुत कुछ करने को मौजूद है, परन्तु उसके लिये केवल नैतिक विरोध (Moral protest) से काम नहीं चलेगा। देश में अहिंसा स्थापन करने का प्रयत्न जनता

---

* If we desire to win our freedom and achieve our welfare as members of the British Empire, here is a golden opportunity for us to do so by helping the British in the war by all the means at our dispolsal (P. 115).

"यदि हम स्वतंत्रता चाहते है और ब्रिटिश साम्राज्य के अंग बने रहकर अपनी भलाई चाहते है, तो हमारे लिये सुनहरा अवसर है कि तन मन धन से ब्रिटेन की सहायता करें।" · ·····अहिंसा के इस आध्यात्मिक आदर्श को समझ पाना आसान काम नहीं। ऐसा ही सुनहरा अवसर १६१४-१६१८ के युद्ध में आया था। महात्मा गांधी ने उससे देश को जितना लाभ हो सकता था पहुँचाया। सन् १६३६ में वह सुनहरा अवसर फिर आया परन्तु किया क्या जाता, उनका बस नहीं चला। जनता को और बातों में मूर्ख बनाया जा सकता है परन्तु इस सुनहरे अवसर से लाभ उठाने के यत्न मे गांधीवाद की सब काई फट जाती।

के राज का रूप ले लेगा, जो गाधीवाद को मंजूर नही। इसलिये देश की राजनैतिक भावना को भँवर में डाले रहने के सिवा दूसरा उपाय नहीं, यही इस आदोलन का उद्देश्य है। यह आदोलन काग्रेस की शक्ति को व्यय कर रहा है परन्तु काग्रेस के उद्देश्य को पूरा नहीं कर रहा।

आन्दोलन का कार्य-क्रम

इस आन्दोलन का कार्य-क्रम भी एक विचित्र वस्तु है। जिस प्रकट या वास्तविक उद्देश्य से आन्दोलन चलाया गया है, उसे ध्यान मे रखते हुए आन्दोलन का कार्य-क्रम और किसी ढंग का हो ही नहीं सकता था। वास्तव में आन्दोलन का उद्देश्य युद्ध का विरोध भी नहीं, उद्देश्य है केवल युद्ध का विरोध करने के अधिकार को मनवा लेना या सरकार को काग्रेस की शक्ति दिखा देना है। युद्ध का विरोध करना इस कार्य-क्रम में शामिल नहीं है क्योंकि कार्य-क्रम की पहली शर्त आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार के काम में किसी प्रकार की अड़चन न होने देना है। युद्ध विरोध का अधिकार माँगने के लिये यदि ऐसे कार्य-क्रम पर चला जाय जिससे वास्तव मे ही युद्ध का विरोध सफलता से होने लगे तो ब्रिटिश सरकार अडचन अनुभव किये बिना नहीं रह सकती ! इसलिये कार्य-क्रम से उन सब कामो को दूर रखा गया जिनका प्रभाव युद्ध के सचालन पर पड सकता था। आन्दोलन को टालकर काग्रेस की इज्ज़त बचा लेने के लिये जनता से राजनैतिक मार्क टाइम † कराते जाना ही उसे काग्रेस के नेतृत्व के कब्ज़े में रखने का उपाय है।

इस सत्याग्रह की सबसे बडी खूबी है, इसका व्यक्तिगत बना दिया जाना। महात्मा गाधी की राय है कि वास्तविक विश्वास और श्रद्धा से सत्याग्रह करनेवाले यदि दो एक व्यक्ति भी सत्याग्रह करे तो उद्देश्य सफल हो सकता है। व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ करने के लिये बयान

† Marktime कवायद में एक ही जगह खडे रहकर कदम उठाते जाना।

देते हुए १५ अक्टूबर १९४० को बम्बई मे महात्मा गाधी ने कहा था "सत्याग्रह चाहे एक व्यक्ति करे और चाहे अनेक करें, उसके स्वरूप में अन्तर नही आता।" यह उनका नया विचार है। सन् १९२० का सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त करते समय उन्होने 'यंग इण्डिया' मे लिखा था—"जब तक आन्दोलन में सहयोग देने के लिये पर्याप्त व्यक्ति और साधन न हो, सफलता नहीं हो सकती। एक व्यक्ति के अकेले सत्याग्रह करने से वह स्वयम् बलिदान हो जायगा परन्तु उसका परिणाम कुछ न निकलेगा *। पूरे बीस वर्ष बाद यह ईश्वर की दूसरी प्रेरणा है कि 'सत्याग्रह का स्वरूप एक ही रहेगा, चाहे उसे एक व्यक्ति करे या अनेक करें।'

यह व्यक्तिगत सत्याग्रह कांग्रेस के आन्दोलन के नाम पर चल रहा है परन्तु कांग्रेस मेम्बर होने के नाते इसमे कोई व्यक्ति भाग नहीं ले सकता। कांग्रेस के आन्दोलन में भाग लेने के लिये कांग्रेस के उद्देश्य में विश्वास और उसके लिये बलिदान हो जाने की इच्छा और प्रतिज्ञा काफी नहीं, बल्कि आवश्यकता है, गाधीवाद मे अन्ध-विश्वास होने की। अनुशासन के तौर अहिंसा का कार्यक्रम मान लेने से भी काम नही चल सकता †। प्रत्येक व्यक्ति को छान-बीन कर स्वयम् महात्मा गाधी या

---

* "You can carry out a seige only when you have the requisite men and instruments of destruction. One man scratching a wall with his finger nails may hurt his fingers but will produce no effect on the walls. "Young India". August 1920.

† पंजाब असेम्बली के सदस्य सरदार सम्पूरणसिंह को सत्याग्रह के अधिकार से इसलिये वंचित कर दिया गया कि उन्होंने अदालत के सामने बयान में यह स्वीकार किया कि अहिंसा पर उनका विश्वास केवल अनुशासन के रूप में है। सर्दार पटेल, श्री राजगोपालाचार्य और मौलाना आजाद का अहिंसा में विश्वास कैसा है यह अखिल भारतीय कांग्रेस के पूना अधिवेशन (जून १९४०) की कारंवाही पढने से पता लग सकेगा।

उनके विश्वासपात्र लोग ही आन्दोलन में भाग लेने की आज्ञा दे सकते हैं। इस सब नाकाबन्दी का प्रयोजन यही है कि राजनैतिक क्रान्ति द्वारा जनता के हाथ में शक्ति और शासन चाहनेवाले लोग आन्दोलन में घुस कर जनता पर प्रभाव न डाल सकें। महात्मा गाधी के एक एलान के अनुसार ईश्वर में विश्वास न रखनेवाले लोग सत्याग्रह में भाग नहीं ले सकते। यह एलान काग्रेस के विधान के विरुद्ध है। काग्रेस के विधान के अनुसार काग्रेस का सदस्य होने के लिये कोई साम्प्रदायिक बन्धन रुकावट नहीं डाल सकता। ईश्वर में विश्वास होना या न होना, एक साम्प्रदायिक मामला है। जो लोग काग्रेस के मेम्बर हो सकते हैं, उन्हें सत्याग्रह में भाग लेने से क्योंकर रोका जा सकता है। इस प्रकार के एलान अप्रत्यक्ष रूप से काग्रेस को गांधीवादी सिद्धान्तो में जकड देने के प्रयत्न के सिवा और क्या है; जिसका परिणाम होगा कि काग्रेस एक शुद्ध साम्प्रदायिक संस्था बन जायगी।

अहिंसा में विश्वास का अनुशासन यहीं तक समाप्त नहीं हो जाता। पूर्ण रूप से गाधीवादी अहिंसा में विश्वास न होने से राष्ट्रीय भावना रखनेवाले लोग आन्दोलन मे भाग नहीं ले सकते और आन्दोलन में भाग न लेनेवाले लोग काग्रेस के किसी पद पर कायम नहीं रह सकते। यह एक अच्छा खासा अहिंसात्मक षड्यंत्र है जिसके द्वारा गाधीवाद में विश्वास न रखनेवाली जनता को काग्रेस से खदेड़कर बाहर निकालने का यत्न किया जा रहा है। कम्युनिस्टों और नाज़ियों पर अहिंसा के भक्त दूसरी विचारधारा के प्रति असहनशीलता का दोष लगाते हैं परन्तु गाधीवाद के अतिरिक्त दूसरे विचार के लोगों के काग्रेस से अहिंसात्मक बहिष्कार (Non violent purge) को क्या कहा जायगा?

गाधीवाद के इस अहिंसात्मक षड्यंत्र की पहुँच क्रान्तिकारी विचार के लोगों को काग्रेस से बाहर निकाल देने तक ही नहीं। व्यक्तिगत

सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार करते समय महात्मा गांधी ने बम्बई में १५ अक्टूबर को एक महत्वपूर्ण संकेत किया था। उनके शब्द थे—"हमें युद्ध के बारे में जितना हम चाहें, कहने का अधिकार होना चाहिए, बशर्ते कि हम अहिंसा पर दृढ़ रहें। सरकार उन्हें गिरफ्तार कर सकती है, जो हिंसा का उपदेश देते हैं।" सरकार किसे गिरफ्तार करे और किसे गिरफ्तार न करे, इस विषय में चिन्ता करने की महात्मा गाधी को या कांग्रेस को क्या ज़रूरत ? हिंसा का उपदेश देता कौन है ? इस बात का उत्तर भी महात्मा गाधी ने संकेत से दे दिया है। जो लोग गाधीवादी अहिंसा में विश्वास प्रकट कर अहिंसा की रक्षा के आन्दोलन मे भाग नहीं लेते, बल्कि किसी दूसरे कार्यक्रम से राजनैतिक स्वतंत्रता चाहते हैं, वे निश्चय ही गाधीवाद की दृष्टि में हिंसा का उपदेश देनेवाले हैं। राजनैतिक क्षेत्र में अपने प्रतिद्वन्दियों पर विरोधी शक्ति का प्रकोप गिराने का यह षड्यंत्र कहाँ तक सत्य और अहिंसा पूर्ण है, यह न्याय की सासारिक बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कठिनता से ही समझ पायेगा।

अपने इसी भाषण में महात्मा गाधी ने यह भी स्पष्ट किया कि "..... इस समय स्वराज्य के लिये लडाई का कुछ अर्थ नहीं, हम भाषण-स्वतंत्रता के लिये लड रहे हैं।" इस वक्तव्य से स्थिति किसी हद तक स्पष्ट हो जाती है परन्तु सचाई का तक़ाज़ा था कि साफ़-साफ़ कहा जाता कि हम बिलकुल ही नहीं लड रहे हैं, केवल रूठकर सरकार को अपनी नाराज़गी दिखाना चाहते हैं ताकि वह समझौते के लिये तैयार हो। जब तक सरकार को हम पर तरस नहीं आ जाता हम कष्ट उठाते रहेंगे। आन्दोलन के लिये जिस कार्यक्रम की तजवीज़ की गई वह इसी प्रयोजन के अनुकूल था। युद्ध विरोध की पुकार को सार्वजनिक रूप से भी नहीं उठाया गया और न उसे देहातों मे किसानों और मज़दूर लोगों में आरम्भ किया गया, जहाँ से लोग युद्ध के लिये भरती

होते हैं। काम शुरू हुआ इस तरह कि कांग्रेस के मंत्रियों तथा ऊँची सामाजिक स्थिति के कांग्रेस-मेम्बरों ने पत्र लिखकर सरकार को सूचना दी कि वे युद्ध विरोध का अपराध करने जा रहे हैं। सूचना देने का प्रयोजन था कि युद्ध विरोध का आन्दोलन जनता में किये जाने से पहले ही सरकार उन्हें गिरफ्तार कर ले। जनता में आन्दोलन भी न हो और सरकार अनुभव करे कि विरोध हो रहा है और उसकी चिन्ता करे। युद्ध विरोध का यह तरीक़ा कितना निस्सार था, यह इस बात से समझा जा सकता है कि पंजाब हाईकोर्ट ने इसे युद्ध विरोध का अपराध ही नहीं समझा। दूसरा ढंग था कि कुछ बड़े आदमी दस-पाँच बड़े आदमियों को युद्ध विरोधी पत्र लिख दें और सरकार को इसकी सूचना दे दी जाय! युद्ध विरोधी व्याख्यान देने या नारा लगाने से पहले सभी जगह सरकार को इत्तिला दे देना ज़रूरी था ताकि आन्दोलन सरकार की नज़रों में होता रहे और जनता तक उसके पहुँचने से पहले ही सरकार उसे रोक सके।

इस आन्दोलन में जिन लोगों ने भाग लिया उनमें मुख्यतः कांग्रेस के पदाधिकारी थे, जिन्हें कांग्रेस में अपनी स्थिति बनाये रखने की ज़रूरत थी या कांग्रेस के अनुशासन का ख़याल था। आम जनता इससे बेख़बर रही। गांधीवाद की गहरी नीति को न समझनेवाले कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस के आन्दोलन की शान रखने के लिये कई स्थानों पर कुछ लोगों को उत्साहित करके आन्दोलन में आगे भेजा परन्तु यह लोग अहिंसा की बारीकियों की अपेक्षा राष्ट्रीय स्वतंत्रता की कल्पना ही मन में लिये हुए थे। एक दफ़े अहिंसा के लिये जेल जाकर, आन्दोलन में जनशक्ति का बिलकुल अभाव देखकर और आन्दोलन का उद्देश्य स्वराज्य के बजाय गांधीवादी अहिंसा की जयकार समझकर उन्होंने दुबारा जेल जाने से इनकार कर दिया। कुछ लोगों ने कांग्रेसी क्षेत्र में अपने सम्मान की रक्षा के लिये आन्दोलन में सम्मिलित होने के

लिये नाम तो दे दिया परन्तु आन्दोलन का उत्साहहीन रूप देखकर वे कतरा गये। इन स्वयमसेवक वीरों को जबरदस्ती जेल भेजने के लिये कांग्रेस से बार-बार एलान किये गये और जेल न जाने की अवस्था में उन्हे कांग्रेस से अलग हो जाने की धमकी दी गई परन्तु प्रभाव कुछ न हुआ।

क्रान्ति की अधकचरी धारणा रखनेवाले लोगों ने राष्ट्रीयता के जोश में आकर इस गांधीवादी आन्दोलन को आम जनता मे फैलाकर राष्ट्रीय रूप देने के लिये इसमे सहयोग दिया परन्तु उन्हे निराश होना पड़ा। कुछ कांग्रेसी नेताओं ने भी कांग्रेस की इज़्ज़त बचाने के लिये इस आन्दोलन को सार्वजनिक रूप देने की अदूरदर्शिता † करने का यत्न किया परन्तु महात्मा गांधी जनता की शक्ति को, विशेष कर क्रान्तिकारी विचार धारा को, दूर रखने के लिये आन्दोलन को संकुचित करते गये। सत्याग्रहियों पर ऐसी-ऐसी पाबन्दियाँ लगाई गई कि सत्याग्रह के किसी भी प्रकार से सार्वजनिक आन्दोलन बन जाने की सम्भावना ही नहीं रही।

इस सत्याग्रह के लिये महात्मा गांधी का दावा है कि यह सत्याग्रह अपना उद्देश्य पूर्ण किये बिना समाप्त नहीं हो सकता। ऐसा ही एलान उन्होंने सन् १९३०, २७ फरवरी को भी किया था। उस समय कहा गया था—"एक भी सत्याग्रही के जीवित रहते या जेल से बाहर रहते, सत्याग्रह बन्द नहीं होगा।" इस सत्याग्रह ने १९३३ में व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप ले लिया और ७ अप्रैल १९३४ के एलान से उसे समाप्त कर दिया गया और व्यक्तिगत सत्याग्रह का अधिकार महात्मा गांधी ने केवल अपने ही लिये रख लिया। १९४० का सत्याग्रह तो आरम्भ ही व्यक्तिगत रूप में हुआ। इसलिये इसका अन्त आने में भी देर नहीं लगरही। जहाँ तक आन्दोलन का सम्बन्ध जनता के सहयोग से है, वह

† महात्मा गांधी के विचार में इसे अदूरदर्शिता ही कहा जायगा।

समाप्त हो ही चुका है * क्योंकि युद्ध के काम में रुकावट डाले बिना और किसी राजनैतिक कारण के बिना चलनेवाले आन्दोलन की रहस्यात्मक नैतिकता को जनता समझ नहीं सकती। अपने जीवन की कठिनाइयों को दूर करने के प्रश्न और युद्ध विरोधों की आध्यात्मिक-नैतिकता में कोई सम्बन्ध उसे दिखाई नहीं देता। सार्वजनिक हित की दृष्टि से यह आन्दोलन केवल निरर्थक कष्ट सहन का उपाय है। उद्देश्य इसका कुछ है ही नहीं जिससे इसकी सफलता या असफलता जाँची जा सके।

जनता के लाभ के विचार को एक ओर छोड़कर यदि आन्दोलन की सफलता की दृष्टि से ही उसका उद्देश्य देखा जाय तो वह है हिंसा न होने देने के लिये युद्ध का विरोध करना। इस उद्देश्य में आन्दोलन की सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार को युद्ध के लिये भारत से जितने रँगरूटों और धन की आवश्यकता थी, बिना किसी अड़चन के उससे अधिक वे पा चुके हैं†।

युद्ध विरोध के गांधीवादी आन्दोलन में कितनी गम्भीरता और ईमानदारी है, जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है, इसका अन्दाज़ा स्वयम् कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों के कार्य से लगाया जा सकता है। कांग्रेस के पूँजीपति सदस्य जनता में सम्मान बनाये रखने के लिये युद्ध

---

* यह बात अगस्त १९४१ में लिखी जा रही है।

† इस बात के प्रमाण के लिये भारत मंत्री श्री एमरी के पार्लियामेण्ट में दिये गये बयानों और भारत सरकार द्वारा युद्ध के लिये भरती किये रँगरूटों और प्राप्त चन्दों से किया जा सकता है। युद्ध के लिये रुपया समेटने के लिये सरकार ने जो काग़ज़ी रुपया या हुण्डी चलाई है, उसकी सफलता इस बात का प्रमाण है कि युद्ध के विरोध का कोई प्रयत्न देश में नहीं हो रहा।

विरोधी नारे लगाकर या युद्ध विरोधी भाषण देकर स्वयम् जेल चले जाते हैं परन्तु उनकी मिलें सरकार को युद्ध के लिये सामान सप्लाई करके लाखों रुपया बटोरती जा रही हैं। यहाँ तक कि स्वयम् गांधी-आश्रमों को भी युद्ध का सामान मुहय्या कर आर्थिक लाभ उठाने की इजाज़त महात्मा गांधी ने दे दी है। युद्ध विरोध का उद्देश्य राज-नैतिक नहीं। युद्ध के विरोध का यह आन्दोलन केवल पीड़ित और असंतुष्ट जनता की आँख में धूल डालकर उन्हे यह समझा देने के लिये है कि तुम्हारी मुक्ति का आन्दोलन चल रहा है, तुम सन्तोष से उसके परिणाम की प्रतीक्षा करो! अपने सकटों को दूर करने के लिये उतावले होकर कोई सार्वजनिक हलचल पैदा न कर देना वर्ना राष्ट्रहित का जादू—जिसे गाधीवाद कर रहा है, बिगड जायगा।

आन्दोलन अपना उद्देश्य पूरा किये बिना बन्द नहीं होगा, इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि जब तक योरुप मे युद्ध चलता रहेगा, कुछ न कुछ युद्ध विरोधी सत्याग्रही जेलों मे बने रहेंगे। युद्ध समाप्त हो जाने पर युद्ध के विरोध का या युद्ध विरोधी प्रचार करने के लिये भाषण की स्वतंत्रता माँगने का प्रश्न रह ही नहीं जायगा। समझा यह जायगा कि युद्ध विरोधी गाधीवादी आन्दोलन मोर्चे पर डटा रहा, उसने क़दम पीछे नहीं हटाया। इस ख़याली तसल्ली से भारत की जनता को क्या लाभ होगा? उनकी अवस्था में इससे क्या सुधार हो सकेगा? युद्ध समाप्त हो जाने के बाद देश राजनैतिक दृष्टि से उसी स्थान पर होगा जहाँ कि वह युद्ध आरम्भ होने के समय या आन्दोलन आरम्भ होने से पहले था। फिर से कांग्रेस के लोग सरकार का काम सम्भाल लेंगे और जनता अपनी असह्य अवस्था में मरती दम तोडती ऐसे समय की प्रतीक्षा करने लगेगी जब उनके हृदय की पुकार उठ सकने का समय आये।

युद्ध के जारी रहने की अवस्था मे कुछ सत्याग्रहियो के लगातार

जेल में बने रहने से या सत्याग्रहियों के कष्ट सहने से देश को क्या लाभ पहुँचेगा ? इस बात का उत्तर गांधीवाद यह देता है कि त्याग और तपस्या में बडी शक्ति है, त्याग और तपस्था कभी निश्फल हो ही नहीं सकती। यह विचार आध्यात्मिक दृष्टि से सही हो सकता है, परन्तु सासारिक अनुभव और क्रियात्मक दृष्टि से यह बात ठीक नही जॅचती। एक व्यक्ति अपने हृदय के सतोष और विश्वास को पूरा करने के लिये, अपने विचार से सत्य और अहिंसा की शक्ति की परीक्षा करने के लियें अपनी शक्ति का चाहे जिस प्रकार उपयोग कर सकता है। यह व्यक्तिगत-स्वतंत्रता का मामला है परन्तु राष्ट्रीय और सामाजिक शक्ति को व्यक्तिगत विचारों या महत्वाकाक्षा पर बलिदान कर देना नीरो, सीज़र और नादिरशाह की निरंकुश तानाशाही से कम नही।

त्याग, तपस्या और बलिदान यदि उद्देश्य के अनुकूल ठीक मार्ग पर किया जायगा तो वह उद्देश्य को प्राप्त करने मे सहायक हो सकता है। यदि बिना किसी उद्देश्य के और ग़लत साधनो को लेकर अस्वाभाविक मार्ग पर त्याग, तपस्या और बलिदान किया जायगा तो वह आत्महत्या के अतिरिक्त और कुछ नही होगा। राष्ट्रीय रूप से ऐसा करना राष्ट्रीय आत्महत्या है। राष्ट्र का हित व्यक्तिगत प्रयत्न या कुर्बानी से पूरा नहीं हो सकता। जब तक अपने त्याग और बलिदान का मूल्य लेने की शक्ति जनता और देश में न हो, व्यक्ति का त्याग और बलिदान केवल राजनैतिक अपराध ही समझा जायगा।

इस देश की स्वतंत्रता के लिये त्याग और बलिदान पहले पहल गाधीवाद ने ही नहीं सिखाया। तीन या छः मास की जेल और खद्दर के मोटे कपड़े पहनने से बहुत बडा त्याग व्यक्तिगत रूप से इस देश की स्वतंत्रता के लिये किया जा चुका है। गाधीवाद और काग्रेस ने इस देश के आतंकवादी क्रान्तिकारियो के काम की निन्दा जी खोलकर की है परन्तु इस बात से वे इनकार नहीं कर सकते कि सैकडों क्रान्ति-

कारियों ने देश के लिये विना हिचके फॉसी के तख्ते पर प्राण दे दिये और आजन्म जेल की सज़ाये भुगतीं। इन आतंकवादी क्रान्तिकारियों के बलिदान यदि देश की जनता को स्वराज्य नहीं दिला सके तो व्यक्तिगत रूप से छः मास जेल काट लेना भी ऐसा नहीं कर सकेगा। जीवन तक का बलिदान करके आतंकवादी क्रान्तिकारी इस देश की जनता को स्वराज्य नहीं दिला सके, इसका कारण यही था कि वे जनता की शक्ति से दूर थे, वे जनता का सहयोग प्राप्त नही कर सके। उनके बलिदान का वह मूल्य न मिला, जो मिलना चाहिये था। सत्याग्रह आन्दोलन मे व्यक्तिगत रूप से हज़ार हिस्सा कम त्याग करके जनता इसलिए सबल हो सकी कि समूह की शक्ति उसके साथ थी। इस देश के राजनैतिक नेताओं ने क्रान्तिकारियों के उत्साह और बलिदान को ग़लत रास्ते पर भटका हुआ बताया। भारत के आतंकवादी क्रान्तिकारियों ने अपनी भूल पहचानकर वैयक्तिक बलिदान का मार्ग छोड जनता की शक्ति का मार्ग अपना लिया लेकिन गाधीवादी काग्रेस समूह की शक्ति को छोडकर व्यक्तिगत बलिदान की ओर लौट रही है।

सोई हुई जनता को जगाने के लिये व्यक्ति का बलिदान उपयोगी हो सकता है परन्तु देश की जनता के जाग चुकने के बाद उसे व्यक्तिगत त्याग द्वारा ख़ामुख़ाह ठेलते जाने से क्या लाभ? ऐसे समय व्यक्ति की शक्ति को जनता से छीनकर बलिदान करदेने का अर्थ है व्यक्ति को खोकर जनता को निर्बल बना देना। सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह का परिणाम यही हुआ। आन्दोलन के परिणामस्वरूप जनता राजनैतिक दृष्टि से एक क़दम भी आगे नही बढ़ सकी और न आन्दोलन की कुर्बानी के फल मे वह पहले से अधिक सगठित और उत्साहित ही हो पाई। इस आन्दोलन से केवल जनता की सामूहिक शक्ति और राजनैतिक उत्साह का नाश ही हुआ।

काग्रेस को मिट जाने से बचाने के लिये यह आन्दोलन चलाया

गया। महात्मा गाधी के एलान के अनुसार यदि काग्रेस इस समय चुप रह जाती तो उसका अस्तित्व मिट जाता। काग्रेस को मिटने से बचाने के लिये किया क्या जा रहा है? गाधीवाद की कसौटी पर कस कर क्रान्तिकारी विचारो और उत्साही कार्यक्रम में विश्वास रखनेवालों का अहिंसात्मक बहिष्कार (Non violent purge) किया जा रहा है। काग्रेस के उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति को स्थगित कर दिया गया है। काग्रेस आन्दोलन में भाग लेने के लिये ईश्वर विश्वास की साम्प्रदायिक शर्त लगाई जा रही है। काग्रेस को समूह की शक्ति से हटाकर वैयक्तिक साधना की वस्तु बनाया जा रहा है। काग्रेस की जो कुछ शक्ति है वह उसके सार्वजनिक कार्यक्रम के कारण ही है। व्यक्तिगत दृष्टि से त्यागी और पहुँचे हुए महात्माओं की तो भारतवर्ष में कभी कमी नहीं रही।

वास्तविक परिस्थिति को देखकर हमें यह मानना पड़ता है कि बिना किसी राजनैतिक उद्देश्य के आन्दोलन द्वारा जनता की शक्ति को बहाकर गाधीवाद ने काग्रेस को बलवान नही निर्बल ही बनाया है। अपनी असह्य अवस्था को प्रकट करने और उसे दूर करने की जो शक्ति जनता में संचय हो रही थी उसे इस निश्फल आन्दोलन की बर्साती नहर में बहा दिया गया, क्योंकि भय था कि जनता के असंतोष का बढ़ता हुआ प्रवाह काग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी की स्थिति और अधिकारो के बाँध को टक्कर मारकर गिरा न दे। इस श्रेणी की स्थिति की रक्षा के लिये, जनता को इन लोगों के कब्ज़े में बनाये रखने के लिये, जनता के असंतोष और जाग्रति को नष्ट कर देना ही गाधीवाद की दृष्टि मे काग्रेस की रक्षा है।

राजनैतिक आन्दोलन की सफलता का मार्ग यह है कि जनता का सचेत अंग आम जनता को साथ लेकर मोर्चे की ओर बढे। इस आन्दोलन में ऐसा नहीं किया गया। आन्दोलन में सहयोग देने के लिये केवल सचेत अंग को पुकारा गया इस शर्त पर कि वह जनता

को साथ न लाये। जनता को साथ लाने के लिये सचेत अंग के पास कोई ठोस पुकार भी न थी। परिणाम यह हुआ कि जनता का राजनैतिक दृष्टि से यह सचेत अंग जो देश की अबोध और अशिक्षित जनता के लिये ज्ञानेन्द्रियों के समान है, जेलों में बन्द होकर जनता से अलग हो गया और जनता चैतन्य के अभाव मे मुसीबत को अनुभव करती हुई भी असमर्थ और निश्चल हो गई।

सन् १६४० के आन्दोलन की सफलता का अनुमान आन्दोलन के दौरान में राजनैतिक कारणों से जेल जानेवाले व्यक्तियों की संख्या से लगाना भी भूल होगी। युद्ध के विरोध में राजनैतिक उद्देश्य के बिना, शुद्ध गाधीवादी सत्याग्रह करके जेल जानेवालों की संख्या राज-नैतिक क़ैदियों में एक चौथाई से अधिक न होगी। जिन राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने गाधीवादी सत्याग्रह नहीं किया, जिन्हे ब्रिटिश सरकार ने युद्ध की अवस्था मे राजनैतिक अशान्ति पैदा न होने देने के लिये जेलों में सुरक्षित रख दिया है, उन्हें सत्याग्रही नही कहा जा सकता। उनके प्रति तो महात्मा गाधी ने १५ सितम्बर १६४० के अपने एलान के अनुसार अपनी उदासीनता प्रकट कर दी है।

आन्दोलन आरम्भ करते समय महात्मा गाधी ने बम्बई के अखिल भारतीय अधिवेशन में कहा था—"मै नहीं जानता मेरे दिमाग़ में जो लक्ष्य है उस तक मैं आपको पहुँचा सकूँगा या नहीं। मुझे अभी तक प्रकाश नही मिला।" ऐसी अवस्था मे जब आन्दोलन का उद्देश्य और मार्ग स्वय महात्मा गाधी के सामने अस्पष्ट था, जनता को उस पर खींच ले जाना जनता की शक्ति और क़ुर्बानी को खिलवाड़ की चीज़ समझने के इलावा और क्या समझा जायगा। यदि नेता के सामने कोई लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट नहीं, तो राजनैतिक ईमान्दारी यही है कि जनता को अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाय।

यह हम स्वीकार करते हैं कि कांग्रेस की नेताशाही महात्मा

गाधी पर आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिये लगातार दबाव डाल रही थी। परन्तु किस प्रकार का आन्दोलन काग्रेस की नेताशाही चाहती थी? ईमान्दारी और विश्वास के नाते वे लोग गाधीवादी अव्यवहारिक अहिंसा में विश्वास नहीं रखते थे यह बात उन्होंने काग्रेस कार्य-कारिणी के पूना अधिवेशन में स्पष्ट करदी थी। स्वराज्य के लिये यदि वे आन्दोलन चाहते थे, तो उसके लिये महात्मा गाधी उपयुक्त नेता नही हो सकते थे क्योंकि मौजूदा परिस्थितियों में स्वराज्य के लिये लड़ाई लड़ना महात्मा गाधी की दृष्टि में उचित नहीं।

इस मतभेद के होते हुए गाधीवाद में और काग्रेस की नेताशाही में मेल हुआ तो किस बात पर? काग्रेस की नेताशाही के सामने प्रश्न था, ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालकर उसे अपनी शर्तें मानने के लिये मजबूर करना। इस काम के लिये काग्रेस-नेताशाही जनता पर विश्वास नही कर सकती थी। कांग्रेस के मंत्री मण्डल बनाकर सरकार चलाने के समय उन्होंने जनता की भावना को समझ लिया। मौजूदा विधान की दृष्टि से व्यवस्था की रक्षा करने के लिये उन्हे साधनहीन जनता—मज़दूरों, किसानों और निम्न श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों के असंतोष को दबाने की चेष्टा करनी पड़ी। त्रिपुरी और रामगढ़ के अधिवेशनों मे भी जनता द्वारा अपनी नीति का विरोध वे देख चुके थे। ऐसे समय जनता को अधिकार प्राप्त करने के आन्दोलन के मार्ग पर चलाने से वह मुँहजोर होकर नेताशाही से अपनी लगाम छुड़ा लेती। ऐसे आन्दोलन से भयंकर परिवर्तन हो जाने का भय था जिसमे शायद मौजूदा व्यवस्था क़ायम न रह पाती। आन्दोलन को बिलकुल ही न चलाने पर जनता का असंतोष और शक्ति जाने किस राह फूट निकलती?

गाधीवाद के सामने भी अपना उद्देश्य है, वह है सत्य-अहिंसा की रक्षा। गाधीवाद जनता में असत्य और हिंसा की बढ़ती हुई भावना

को दूर करना चाहता है। यह असत्य और हिंसा है, समाज में पैदा हो जानेवाला संघर्ष। इस संघर्ष को रोकना, इस संघर्ष की राह से आती हुई नयी व्यवस्था का मार्ग बन्द करना ही गाधीवाद का उद्देश्य है। देश का राजनैतिक उद्देश्य और 'प्रकाश' महात्मा गाधी के सामने स्पष्ट न होते हुए भी एक बात गाधीवाद के सामने स्पष्ट थी कि जनता को हिंसा या व्यवस्था के परिवर्तन के प्रयत्न से रोकना है।

काग्रेस-नेताशाही और गाधीवाद के राजनैतिक आदर्शों में भेद होते हुए भी जनता को परिवर्तन और विकास पर आगे बढ़ने से रोकने में दोनों एक राय थे। इसलिये जनता की शक्ति को शिथिल करने का आन्दोलन जनता के सेवक और मित्र महात्मा गाधी के नेतृत्व में गाधी-वाद की अहिंसा के रूप में आरम्भ होगया। गाधीवाद का सत्य, अहिंसा, त्याग का उपदेश और पूँजीवादी तथा ज़मींदारी व्यवस्था की स्वार्थी भावना परस्पर विरोधी है परन्तु उन्नति का मार्ग रोककर मौजूदा व्यवस्था को क़ायम रखने में गाधीवाद सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों का सहायक है। गाधीवाद का उपदेश मालिक श्रेणी के लिये नहीं जनता के लिये है। मालिक श्रेणी गाधीवाद की उन्नति और विकास-विरोधी नीति को श्रद्धा का स्थान दें उससे जनता को दबा देना चाहती है। जनता के हित की दृष्टि से गाधीवाद समाज के शरीर में निष्प्राण हो गये भाग के समान है, जो उसके स्वास्थ्य और विकास के लिये बाधक है।

समझौते का द्वार खुला है

"Door for compromise remains open" Mahatma Gandhi.

काग्रेस की नेताशाही जनता की बागडोर मुट्ठी में रखने के लिये सदा राजनैतिक क्रान्ति की बात करती है परन्तु उसकी नीति है, जनता के दबाव द्वारा सरकार को अपने हित की शर्तों पर समझौते के

लिये मजबूर करना। मौजूदा व्यवस्था को पलट देना वह नहीं चाहती। गाधीवाद की भाषा में इसे वह हिंसा कहती है। इस व्यवस्था की रक्षा करते हुए सरकार से अधिकार खींचना उनका कार्यक्रम है। ऐसी व्यवस्था लाने के लिये वह कभी तैयार नहीं जिसमें उनकी मौजूदा स्थिति और अधिकार जाते रहें। नयी व्यवस्था की भावना को वह जनता में अनुभव करती है, इसलिये स्वराज्य की लड़ाई या राजनैतिक संघर्ष को वह अपने कब्ज़े में रखते हुए शनैः-शनैः आगे बढ़ाना चाहती है। जनता की शक्ति से अधिक विश्वास उसे गाधीवाद की हृदय परि-वर्तन की नीति पर है। हृदय परिवर्तन की नीति का अर्थ है कि अँग्रेज़ सरकार * इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों के हितों और अपने हितों में समानता समझकर इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों का शासन क़ायम होने में सहयोग दे।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही इस देश की मालिक श्रेणी के हाथ से सब अधिकार छीन कर अकेले यहाँ शासन नहीं कर सकती। इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के लिये भी ब्रिटिश साम्राज्यशाही के नियंत्रण को सहसा तोड़कर अपना एकछत्र अधिकार क़ायम कर लेना सम्भव नहीं। इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यवस्था को पलट देनेवाली क्रान्ति का भय है। देश की आम जनता का शोषण करने के अधिकार को यह दोनों ही शक्तियाँ अपने हाथ में रखना चाहती हैं, इसलिये इन दोनों में होड़ और मुक़ाबिला है। इस मुक़ाबिले के बावजूद वे एक दूसरे की सहायता से ही अपना अस्तित्व क़ायम रखे हुये हैं। अकेले दोनों में से कोई भी इस व्यवस्था को क़ायम रखने में सफल नहीं हो सकता। इनमें से एक हिस्सेदार के मिटने का अर्थ होगा, इस व्यवस्था का अन्त और नयी व्यवस्था का आ जाना। इस नयी व्यवस्था में इस देश की जनता पैदावार के साधनों को अपने हाथ में कर आत्म-निर्णय का

* अँग्रेज सरकार या ब्रिटिश साम्राज्य की नीति को चलानेवाली श्रेणी।

अधिकार अपने हाथ में रखेगी। आत्मरक्षा और स्वार्थ के विचार से ब्रिटिश साम्राज्यशाही और इस देश की शोषक श्रेणी एक दूसरे के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये मजबूर है। यह दोनों शक्तियाँ अपने स्वार्थों को जिस प्रकार सटा सकें, वही वैधानिक आन्दोलन और समझौते का मार्ग है। जिसका दरवाजा गांधीवाद सदा खुला रखता है।

गाधीवाद समझौते का मार्ग खुला रखकर हृदय परिवर्तन द्वारा समस्या का हल करना चाहता है क्योंकि पुरानी व्यवस्था की रक्षा के लिये नयी व्यवस्था का मार्ग इसी तरह बन्द किया जा सकता है। समझौते और हृदय परिवर्तन की इस नीति में उस जनता के लिये स्थान नहीं है, जिसका जीवन मौजूदा व्यवस्था में असम्भव हो रहा है! समाज की रक्षा और विकास के लिये यदि परिवर्तन द्वारा मार्ग खोलने की ज़रूरत है, तो उसके लिये भी समझौते और हृदय परिवर्तन की नीति में गुंजाइश नहीं। जनता के आत्म निर्णय का अधिकार या स्वराज्य गाधीवाद की इस नीति से कभी प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि वह उसके आदर्श और उद्देश्य के विरुद्ध है। पुराने समय की नैतिकता और व्यवस्था का ढाँचा लिये हुये गाधीवाद की लाश मनुष्यता के मार्ग में केवल अड़चन ही बन रही है। मनुष्यता के विकास के विरोधी और समय के प्रतिकूल यह निर्जीव सिद्धान्त अपनी सड़ान्ध से समाज के मस्तिष्क में भ्रम पैदा कर उसे वास्तविक सत्य और अहिंसा को पहचानने से रोके हुये है।

कोई भी राष्ट्र या देश इस युग में अन्य देशों के प्रभाव से अलग नहीं रह सकता। भारतवर्ष के लिये भी ऐसा करना सम्भव नहीं। संसार इस समय परिवर्तन के द्वार पर खड़ा है और व्यवस्था की नई मंज़िल पर क़दम रखना चाहता है। शोषण की मौजूदा व्यवस्था में शासन का अधिकार रखनेवाली श्रेणी इस परिवर्तन को रोकने का यत्न कर रही है। इस श्रेणी के इलावा शेष मनुष्य समाज नयी व्यवस्था लाने का

प्रयत्न कर रहा है। नयी व्यवस्था को रोककर शासक और मालिक श्रेणी के अधिकारों की रक्षा करने का प्रयत्न नाज़ीवाद और फैसिस्ट-वाद के रूप में प्रकट हो रहा है। भारतवर्ष में यह प्रयत्न अहिंसा का चोला पहनकर गाधीवाद के रूप मे चल रहा है। गाधीवाद समाज की जिस व्यवस्था और पद्धति में पैदा हुआ, उसी की रक्षा का प्रयत्न वह कर रहा है। इस व्यवस्था के कारण जिस श्रेणी का पीडन और शोषण हो रहा है, जो श्रेणी इस व्यवस्था को बदलना चाहती है, उसका गाधीवाद से सहयोग नहीं हो सकता।

गाधीवाद का कार्यक्रम भारत के राजनैतिक विकास के लिये नहीं बल्कि विपरीत परिस्थितियों में स्वयम् अपनी रक्षा का प्रयत्न है। इसके लिये वह भारत के स्वाभाविक विकास का बलिदान कर रहा है। इति-हास इस बात का गवाह है समाज की परिस्थितियाँ बदल जाने पर नैतिकता भी बदल जाती है। नयी आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में पुरानी नैतिकता को नया भावुक रूप देने वाले गाधीवाद के लिये स्थान नही। अपनी आर्थिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये भारत का 'गाधीवाद' से मुक्ति पाना आवश्यक है। †

---

† व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गांधीवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भेद समझने के लिये विप्लव और विप्लवी ट्रैक्ट की फाइल उपयोगी होगी।